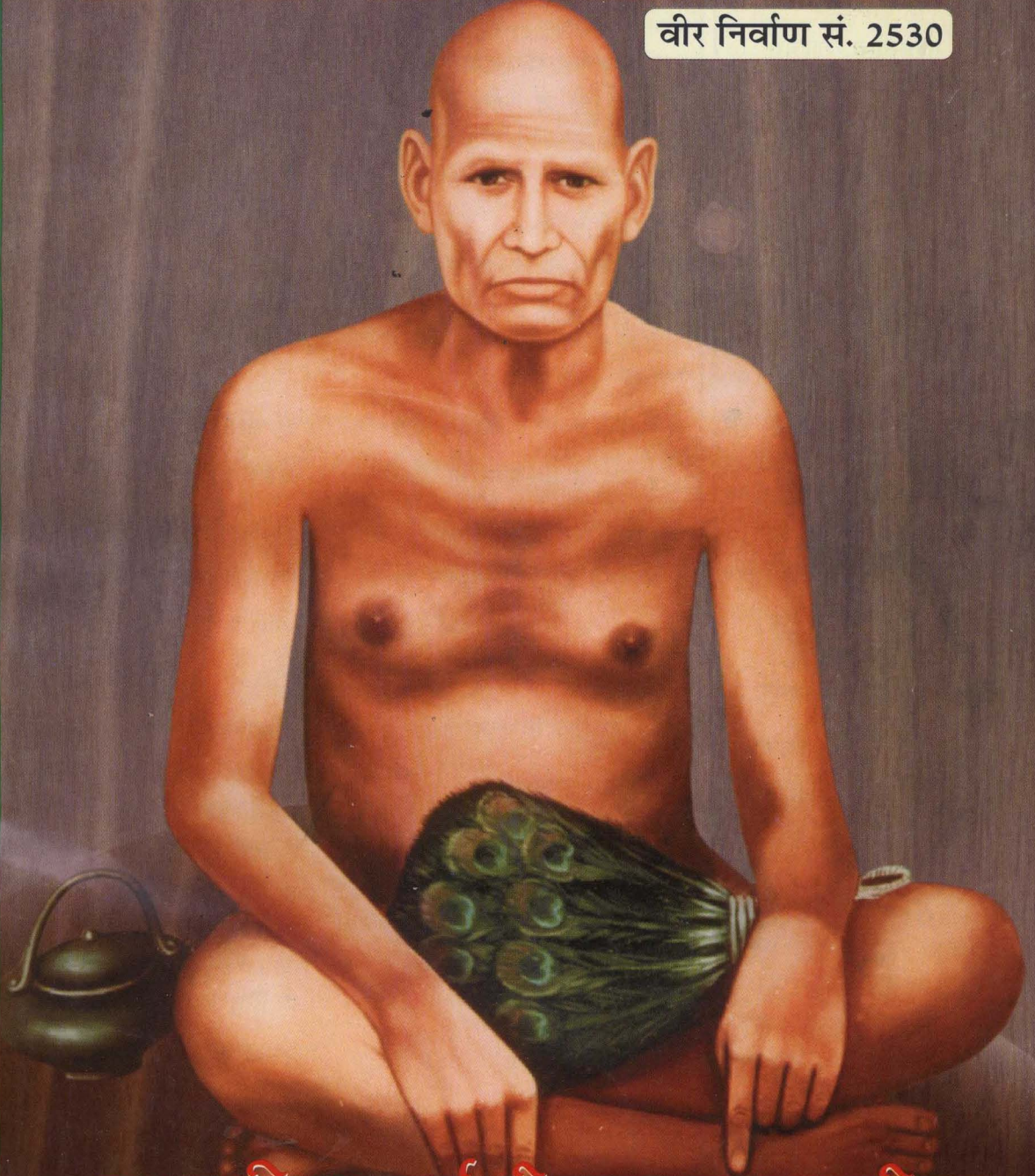


जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530



महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का
३२वाँ समाधिदिवस

आषाढ़, वि.सं. 2061

जून 2004

जून 2004

मासिक
जिनभाषित

वर्ष 3,

अङ्क 5

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन, 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर. के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन: 0562-2151428, 2152278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 500 रु.
वार्षिक 100 रु.
एक प्रति 10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

	पृष्ठ
❖ आपके पत्र, धन्यवाद	1
❖ सम्पादकीय	: मिथ्यात्व का प्रचार 2
❖ प्रवचन	
◆ समाधि दिवस :	: आचार्य श्री विद्यासागर जी 5
आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज	
◆ सुख चाहते हो तो दूसरों	: मुनि श्री सुधासागर जी आव.पृ.3
❖ लेख	
◆ ज्ञान के सागर आचार्य श्री ज्ञानसागर :	डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 7
◆ आ. श्री ज्ञानसागर जी की जीवन...	: श्रीमती सुशीला पाटनी 10
◆ रात्रि-भोजन त्याग	: स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया 12
◆ णमो लोए सव्वसाहूणं	: स्व. पं. लालबहादुर जी शास्त्री 15
◆ भगवान् महावीर : व्यक्ति....	: अरुण जैन 17
◆ शरीर, मन और मस्तिष्क....	: सुरेश जैन 18
◆ प्राकृतिक चिकित्सा है....	: डॉ. वन्दना जैन 20
❖ जिज्ञासा-समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा 22
❖ बाल वार्ता	
◆ साधु बनूँ कि शादी करूँ ?	: डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 26
❖ ग्रंथ समीक्षा	
◆ आत्म बोध	: ब्र. विद्युल्लता शहा 19
❖ कविताएं	
◆ घर	: के. आर. पथिक 9
◆ सम्यक्- अनुप्रेक्षा	: महेन्द्र कुमार जैन आव.पृ.4
❖ समाचार	27-32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

‘जिनभाषित’ प्रतिमाह नई सज्जा एवं सामग्री के साथ प्राप्त हो रही है। पत्रिका प्राप्त होने पर बच्चे जब मेरे-कमरे में, मुझे देने आते हैं तो मुझसे पहले मेरे पतिदेव, जो पैरालिसेस से ग्रस्त बिस्तर पर हैं, अपना हाथ आगे बढ़ाकर पत्रिका ग्रहण कर लेते और खोलकर पढ़ने लगते हैं। जब तक उनका मन होता है बहुत ध्यान से पढ़ते हैं। शेष समय में पत्रिका मेरी और पुत्रवधु की होती है।

प्रत्येक पत्रिका के मुखपृष्ठ एवं आवरण पृष्ठ पर आकर्षक और दर्शनीय चैत्यालय, जिनबिंब एवं मुनिराज के चित्रों के दर्शन घर बैठे ही भक्ति-विभोर हो, वृद्धावस्था सार्थक मान लेते हैं।

माह अक्टूबर से कविताओं में निरंतरता आ रही है। संक्षिप्त में कहूँ तो सभी विद्वानों के लेख एवं कवियों की कविताएं प्रशंसनीय रही हैं। सभी रचनाकारों को धन्यवाद। अक्टूबर 2003 “रे मन तू व्यवसायी है” कविता के लिए- प्रो. भागचंद जी जैन “भास्कर” को मेरी ओर से (आपके अभिन्न मित्र डॉ. प्रेमचंद जी जैन चंडीगढ़ की अग्रजा की ओर से) बहुत-बहुत बधाई। डॉ. विमला जी “विमल” के दोहे सार्थक संदर्भ लिए अच्छे लगते हैं। जनवरी 2004 में डॉ. वंदना जैन की कविता- “और वह चली गई” मन को छू गई। काश! ऐसी जिजीविषा सभी को होती। कवि की कल्पना साकार भी हो जाती है। माह अप्रैल में कविता- “विद्यासागर” के लिए नवयुग कवि श्री मनोज जैन “मधुर” हार्दिक बधाई के पात्र हैं। मनोकामना है कि “मधुर जी” कविता के गगन में जगमगाते सितारे बनें।

इन सबसे भी ऊपर हैं सम्पादकीय लेख जो विद्वता की चरम सीमा को छूते हैं। विशेष कर मार्च, अप्रैल के सम्पादकीय धन्यवाद। और अंत में-

“जिज्ञासा समाधान”

“जिनभाषित का प्राण”

आशा, अभिलाषा एवं विश्वास है कि पत्रिका इसी प्रकार प्रगति के सोपानों पर चढ़ती हुई मार्गदर्शक साहित्य का सृजन करने में तत्पर रहेगी।

ज्ञानमाला जैन

भोपाल

‘जिनभाषित’ का मार्च, 2004 अंक मिला, धन्यवाद। पत्रिका में रामटेक के श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र का बहुत अच्छा वर्णन दिया गया है। रामटेक तो बहुत पुरानी धर्म-स्थली है, यहाँ प्रसिद्ध राम मंदिर भी है। यह वही रामटेक है जहाँ कालीदास जी ने मेघदूत की रचना की थी। रामटेक प्रकृति की गोद में बसा हुआ बहुत सुन्दर गाँव है जहाँ पर जाने में मन पूरी तरह तृप्त हो जाता है।

डॉ. वंदना जैन ने ‘प्राकृतिक चिकित्सा में काफ़ी अच्छी जानकारीयों प्रस्तुत की हैं। आज हम प्राकृतिक चिकित्सा को भूलते जा रहे हैं। अंग्रेजी दवाईयों की अंधी दौड़ में दौड़े जा रहे हैं, इससे नुकसान अधिक फायदे कम हैं, खर्च भी बहुत होता है। ‘प्राकृतिक चिकित्सा’ तो बहुत सीधे, सरल, कम खर्च वाली ऐसी चिकित्सा है जिसके माध्यम से हम लंबे अरसे तक स्वस्थ रह सकते हैं। हमें एलोपैथी चिकित्सा से दूर रहकर ‘प्राकृतिक चिकित्सा’ के और नज़दीक आना होगा, जो आज समय की सबसे बड़ी माँग है। आप जिस मनोयोग से पत्रिका निकालते हैं, वह सचमुच बहुत स्वागतयोग्य है।

राजेन्द्र पटोरिया

संपादक, खनन भारती, नागपुर

अपनी प्रियता की ओर कदम बढ़ाती हुई ‘जिनभाषित’ पत्रिका मिली। अप्रैल और मई अंक में प्रकाशित संवेदनाओं से भरपूर, प्रकृति और यथार्थ को अपने में समेटे हुए संवेदनशील कवि मुनिवर ‘क्षमासागरजी’ की मार्मिक कविताएं पढ़ी।

हम जितने खुले और पवित्र मन से उस परमात्मा का आवहान करते हैं, सचमुच हम उसके उतने ही करीब अपने को पाते हैं। बहुत सच लिखा कवि ने कि- ‘जितना जिसके जीवन में समा जाए, भगवान उतना ही बड़ा है।’ और फिर ऊँचाईयों का स्पर्श देती हुई ये पंक्तियाँ कि ‘अपनी आवाज, अपने तक आती रहे, इतना ही ऊँचे उड़ना है।’

तथा मेरे जीवन की धार, निर्बाध बहती रहे परमात्मा से प्रार्थना है कि इस साधक की साधना निरन्तर और निर्विघ्न चलती रहे। इन चरणों में मेरे बारम्बार नमन्।

अरुणा जैन

तुलसी आँगन, वाशीनगर, नई मुम्बई (महा.)

गत कुछ वर्षों से दि. जैन मंदिरों में पद्मावती माता एवं क्षेत्रपाल बाबा की मूर्तियों की स्थापना एवं उनकी स्तुति पूजा आरती रूप उपासना का प्रचार बढ़ रहा है। मध्यकाल में परिग्रहधारी मठाधीश भट्टारकों ने अपने अस्तित्व के लिए एक सुविचारित योजनाबद्ध षडयंत्र रचा। वे जानते थे कि दि. जैन धर्मावलम्बी जब तक वीतराग देवशास्त्रगुरु की उपासना में संलग्न रहते हुए जैन आगम का पठन-पाठन करते रहेंगे तब तक भ्रष्ट मुनियों के रूप परिग्रही भट्टारकों को मुनिवत मान्य नहीं करेंगे। अतः उन्होंने साधारण गृहस्थ जैनों को जैन तत्व ज्ञान से वंचित रखते हुए उनकी ऐसी नस को पकड़ा कि वे भयग्रस्त, लोभग्रस्त होकर विवेक हीन हो गए और उनके चंगुल में फंसे रहते हुए उनको गुरु मानने लगे। साधारण धर्मभीरू व्यक्ति के मनोविज्ञान को जानकर उन्होंने अपनी मंत्र तंत्र की साधना एवं चमत्कार की बातें प्रचारित कर लोगों को सम्मोहित कर लिया एवं अनिष्ट का भय दिखाकर किसी में विरोध के स्वर उठाने का साहस उत्पन्न नहीं होने दिया। लौकिक दुःख संकटों से त्रस्त साधारण व्यक्तियों को उनसे छुटकारा पाने के लोभ में भट्टारकों को अनुयायी बना दिया। भट्टारकों ने धीरे धीरे वीतराग जिनेन्द्र देव के स्थान पर जैन नाम का मुखौटा पहनाकर पद्मावती यक्ष आदि देवी देवताओं की उपासना की और जैन लोगों को आकृष्ट कर लिया। उन विद्वान भट्टारकों ने पद्मावती यक्ष आदि देवी देवताओं के मंत्र एवं पूजा उपासना का विधान करने वाले शास्त्रों की रचना कर दी। उन शास्त्रों को पढ़कर साधारण अल्पज्ञानी गृहस्थों की तो बात ही क्या अच्छे-अच्छे साधुगण भी प्रभावित हो गये और उन मिथ्या देवी देवताओं की पूजा उपासना का प्रबल समर्थन करने लगे। यह है दिगम्बर जैन धर्म में पद्मावती यक्ष आदि देवी देवताओं के उदय का संक्षिप्त इतिहास।

अभी जैन गजट दिनांक १५ अप्रैल, २००४ के अंक में 'आस्था का केन्द्र माता पद्मावती जी की प्रतिमा' हैडिंग वाले सहाहनपुर के समाचार प्रकाशित हुए हैं। समाचारों में लिखा है कि तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ के मुनि अवस्था में कमठ द्वारा किए गए उपसर्ग के समय पद्मावती माता ने अपनी फण फैलाकर बनाए गए सिंहासन पर उनको विराजमान किया व धरणेन्द्र के जीव ने फण फैलाकर मुनि पार्श्वनाथ के सिर पर छत्र बना दिया और इस प्रकार उपसर्ग दूर हुआ और मुनि पार्श्वनाथ को कैवल्य ज्ञान की उत्पत्ति हुई। यहीं से माता पद्मावती का उदय हुआ तथा प्रत्येक शुक्रवार को स्त्री पुरुष माता पद्मावती जी के व्रत उपवास आदि करते हैं। माता पद्मावती अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। तथा मनोकामना पूर्ण करती हैं।

यहां कैसा असंगत, असंभव और मिथ्या विवरण प्रस्तुत कर इतिहास को एवं सिद्धांत को तोड़ मरोड़कर विकृत किया गया है। जैन आगम में पार्श्वनाथ मुनि महाराज के उपसर्ग दूर करने के लिए धरणेन्द्र के द्वारा छत्र ताने जाने का कथन मिलता है। उपसर्ग के समय ध्यानस्थ मुनि महाराज को पद्मावती देवी ने अपने फण पर कैसे बैठा लिया? पद्मावती देवी ने अपनी स्त्री पर्याय को ध्यान में रखते हुए मुनि महाराज के शरीर का कभी स्पर्श नहीं किया होगा। फिर पद्मावती देवी के फण के ऊपर मुनि महाराज कैसे बैठ सकते थे। स्वयंभू स्तोत्र में भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति में आचार्य भगवान समंतभद्र देव ने धरणेन्द्र द्वारा ही उपसर्ग से मुनि पार्श्वनाथ स्वामी की रक्षा करने का वर्णन किया है। उत्तर पुराण में लिखा है धरणेन्द्र ने मुनि महाराज को फण पर उठाया और उनकी देवी मुनि महाराज के ऊपर छत्र तानकर खड़ी रही। पार्श्वपुराण में धरणेन्द्र द्वारा ही फण को फैलाये जाने का उल्लेख है। अतः पद्मावती के फण पर मुनि पार्श्वनाथ की प्रतिमा का बैठाना आगम और सिद्धांत दोनों से बाधित है।

जिन शासन के भक्त सम्यग्दृष्टी देव और मनुष्य ही नहीं तिर्यन्च भी धर्मायतनों, गुरुओं एवं धार्मिक व्यक्तियों पर आए उपसर्ग को दूर करने के लिए यथा शक्ति तत्पर रहते हैं। सम्यग्दर्शन के अस्तित्व के कारण उनकी ऐसी साहजिक प्रवृत्ति होती है। मुनि पार्श्वनाथ के पुण्योदय और धरणेन्द्र के अपने धर्म प्रेम के कारण सहज ही धरणेन्द्र अपनी पत्नी सहित मुनि महाराज का उपसर्ग दूर करने उपस्थित हुए थे। इसमें पार्श्वनाथ द्वारा नाग नागनी पर पूर्व भव में किए गए उपकार का स्मरण भी कारण रहा हो सकता है। किन्तु मुनि पार्श्वनाथ के हृदय में उपसर्ग के कारण किसी प्रकार का दुःख संताप उत्पन्न नहीं हुआ था। उन्होंने धरणेन्द्र को सहायता के लिए न स्मरण किया था और न निवेदन किया था।

समाचार लेखक के इस कथन से कि पार्श्वनाथ मुनि महाराज के उपसर्ग निवारण की घटना से ही माता पद्मावती का

उदय हुआ यह तो लेखक स्वयं मानते हैं कि इससे पूर्व पद्मावती माता का उदय नहीं हुआ था। इस घटना के बाद भी भट्टारकीय काल के पूर्व तक पद्मावती माता की उपासना भक्ति का उल्लेख कहीं किसी ग्रंथ में नहीं आया है। उत्तर पुराण व महावीर पुराण एवं अन्य पश्चात् कालीन पुराणों में पद्मावती की भक्ति पूजा आदि का उल्लेख नहीं आया है। पार्श्वनाथ मुनिराज के उपसर्ग के पूर्व में भी पद्मावती देवी का अस्तित्व तो था फिर उदय क्यों नहीं हुआ? क्या धार्मिक जनों की सहायता की भावना का उनमें अभाव था?

उपसर्ग निवारण में पुराणों में धरणेन्द्र की मुख्यता का वर्णन मिलता है। उनकी पत्नी पद्मावती तो केवल वहां उपस्थित रहीं थी। फिर पद्मावती माता का ऐसा तीव्र उदय क्यों हुआ कि भक्त लोग उनके नाम पर व्रत उपवास करने लगे उनकी माला जपने लगे, उनकी पूजा आरती करने लगे और उपसर्ग दूर करने में मुख्य भूमिका निभाने वाले धरणेन्द्र गौण हो गए। पद्मावती माता भक्ति करने वाले भक्तों की रक्षा करने लगी और माता उनकी मनो कामना पूर्ण करने लगी।

वस्तुतः निष्पक्ष होकर इतिहास के अंतर में खोज करने पर हम पायेंगे कि जैसा ऊपर लिखा है देश में भट्टारकों के उदय के साथ ही पद्मावती माता का भी उदय हुआ है। धनार्थी एवं दुःख भीरू व्यक्ति अज्ञान के कारण चमत्कारों के प्रभाव में आकर पद्मावती आदि देवी देवताओं की पूजा उपासना की और आकृष्ट हो गए। आगम स्वाध्याय से रहित भोले व्यक्ति की धारणाओं के अनुसार लौकिक सुख दुःख ईश्वर अथवा देवी देवताओं की कृपा अकृपा से होते हैं। अतः दुःख से बचने और सुख प्राप्त करने के लिए वह देवी देवताओं की उपासना भक्ति कर उन्हें प्रसन्न करना चाहता है। अज्ञान लोग जिस प्रकार अपने अपने देवी देवताओं की पूजा भक्ति करते हैं जैन लोग भी वैसे ही पद्मावती यक्ष आदि को जैनियों के देवी देवता मानते हुए उनकी भक्ति उपासना करने लगे हैं। किंतु वैज्ञानिक आधार सहित युक्ति युक्त जैन तत्व दर्शन में किसी भी जीव का भला बुरा करने की सामर्थ्य न ईश्वर में है न अन्य देवी देवताओं में। अतः किसी भी प्रकार की लौकिक लाभ की आकांक्षा से देवी देवताओं की पूजा आराधना निरर्थक है। जैन दर्शन में वीतरागी भगवान् जिनेन्द्र की उपासना का उद्देश्य भी किसी प्रकार का लौकिक लाभ प्राप्त करना नहीं है बल्कि आध्यत्मिक शांति एवं संतोष जाग्रत कर स्वयं वीतराग बन जाना है। भट्टारक काल में ही पद्मावती आदि देवियों और शासन देवताओं की स्वतन्त्र मूर्तियों का निर्माण प्रारंभ हुआ था। यह काल लगभग बारहवीं शताब्दी का रहा है। इससे पूर्व वीतराग भगवान् जिनेन्द्र की प्रतिमा के दोनों पार्श्व भाग में यक्ष यक्षिणियों की मूर्तियां चमर ढोरने, नृत्य करने आदि की मुद्रा में अवश्य पाई जाती हैं। किंतु किसी भी देवी देवता की स्वतन्त्र मूर्ति का निर्माण नहीं होता था। भट्टारकीय काल में धनादि लौकिक अनुकूलताओं के आकांक्षी लोगों का ध्यान धर्म की आध्यत्मिक तात्त्विक पक्ष की ओर से हटाकर बाह्य क्रिया कांडों में उलझाए रखने के उद्देश्य से सरागी देवी देवताओं की स्वतंत्र मूर्तियों का निर्माण किया गया और इन देवी देवताओं की उपासना के मंत्र तंत्रादि की साधना विधि वाले पूजा विधान लिखे गये। सरागी मिथ्यादृष्टि अथवा अविरत सम्यग्दृष्टि देवी देवताओं की भी लौकिक आकांक्षाओं के लिए पूजा उपासना करना साक्षात् मिथ्यात्व है। यह मिथ्यात्व का प्रचार पद्मावती क्षेत्रपाल आदि देवी देवताओं की मूर्ति निर्माण से आगे बढ़कर उनके स्वतंत्र मंदिरों के निर्माण तक पहुंच गया है।

अनेक विद्वान् व साधुगण समझौतावादी नीति का अनुसरण करते हुए एक मध्यम मार्गीय व्यवस्था देते हुए कहते हैं कि पद्मावती क्षेत्रपाल आदि सरागी देवी देवता पूज्य नहीं हैं किन्तु सम्मान्य हैं। ऊपरी तौर पर बात कुछ ठीक सी प्रतीत होती है और हम उन देवी देवताओं की उपासना को पूजा के दायरे से निकालकर सम्मान्य के रूप में सहन करते हुए संतुष्ट हो जाते हैं। यह स्थिति हमारी श्रद्धा की समीचीनता के लिए समान रूप से खतरनाक है और मीठे जहर के रूप में हमारे धार्मिक स्वास्थ्य को नष्ट करने वाली है।

जहां तक सम्मान्य या समुचित आदर करने का एवं अनादर नहीं करने का प्रश्न है, हमारे आचार्यों का उपदेश है कि हमें संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए। मैत्रीभाव ही तो सम्मान्य है। मैत्री भाव में अनादर का अभाव निहित है। वास्तव में हम पद्मावती यक्षादि देवी देवताओं का विरोध नहीं करते हैं। वे तो जैन धर्म के श्रद्धालु होने के नाते साधर्म्य हैं। अन्य साधर्म्य जनों की भांति उनके प्रति भी हमारा मैत्री भाव वात्सल्य भाव है। विरोध तो उनकी स्वतन्त्र मूर्तियां बनाकर मंदिर में स्थापित करने, उनके स्वतन्त्र मंदिर बनाने, उनकी पूजा स्तुति भक्ति आरती आदि करने, उनकी माला मंत्र जपने, उनके नाम पर उपवास व्रत करने का है। ये सब मिथ्यात्व पोषक क्रियाएं हैं। इनका प्रचार मिथ्यात्व का प्रचार है।

यदि जिनेन्द्र भक्त होने के आधार पर इन पद्मावती यक्षादि देवी देवताओं की उपासना किया जाना संगत माना जाए तो इन भवनवासी देवों से ऊंची जाति के एवं इनसे अधिक शक्तिशाली वैमानिक देव इन्द्र आदि इनसे विशिष्ट जिनेन्द्र भक्त हैं। सौधर्म इन्द्र तो नियम से सम्यग्दृष्टि होने के साथ द्वादशांग का ज्ञाता भी होता है। ये भवनत्रिक के देव तो उसके

आज्ञाकारी चाकर हैं। वह अतुल बलशाली वैभवशाली एवं सामर्थ्यशाली होता है। उनकी मूर्तियों की स्थापना कर पूजा करना अधिक उपयुक्त माना जाना चाहिए। अस्तु: भट्टारकों द्वारा स्वार्थसिद्धि एवं अपने अस्तित्व के लिए डाली गई इन सरागी देवी देवताओं की पूजा उपासना की मिथ्या परंपराओं को तोड़ा जाना चाहिए। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लौकिक सिद्धियों के लिए इन सरागी मिथ्या देवी-देवताओं की पूजा उपासना का सबल शब्दों में निषेध किया गया है। जिनेन्द्र भक्त की यह दृढ़ श्रद्धा होती है कि अपने पुण्य-पाप कर्मों के अतिरिक्त मुझे सुख-दुःख देने की सामर्थ्य किसी देवी-देवता में नहीं है।

आचार्य समंतभद्र का स्पष्ट उद्घोष 'नान्यथा ह्यासता भवेत्' हमारा मार्गदर्शन करता है कि सर्वज्ञ वीतरागी के अतिरिक्त और कोई हमारा उपास्य कभी नहीं हो सकता। हमारी पूजा के पात्र केवल नव देवता होते हैं। इसके बाद संयम के आधार पर आदराभिष्यक्ति की व्यवस्था होती है। सरागी देवी-देवताओं को यदि कदाचित् सम्यग्दृष्टि भी मान लिया जाय तो ये अविरत सम्यग्दृष्टि हम देशव्रती श्रावकों के द्वारा किस रूप में सम्मान्य हो सकते हैं। फिर इन अविरत् सम्यग्दृष्टियों की मूर्तियों की जिन मंदिर में स्थापना किसी भी आगम और तर्क से उचित नहीं ठहराई जा सकती है। उनके स्वतन्त्र मंदिर का निर्माण तो मिथ्यात्व के प्रचार का और दि. जैन धर्म के अपवाद का एक अत्यन्त बीभत्स रूप है। पद्मावती क्षेत्रपालादिक यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो वे श्रावकों के द्वारा अपनी पूजा कराने का स्वयं घोर विरोध करेंगे। ऐसे मिथ्यात्व के प्रचार में वे अपने नाम और मूर्ति के निमित्त को कैसे अच्छा मानेंगे। वे तो कदाचित् जिनेन्द्र भगवान के अनन्य भक्तों की धार्मिक जीवन में आए संकटों में सहायता करते हैं न कि स्वयं के भक्तों की। सरागी देवी-देवताओं के भक्त तो दो कारणों से सम्यग्दृष्टि नहीं होते। एक इसलिए कि वे सरागी देवी-देवताओं की उपासना करते हैं और दूसरा इसलिए कि वह उपासना लौकिक सिद्धियों के लिए की गई है जिससे सम्यग्दर्शन के निकांक्षित अंगका भंग होता है। श्रावकों की बात तो दूर रही वर्तमान में तो कतिपय मुनिराज भी पद्मावती अथवा शासन देवताओं को सिद्ध कर उस सिद्धि के बल पर अपने भक्तों के लौकिक दुःख दूर करने एवं उन्हें लौकिक वैभव प्राप्त करने में लगे हुए हैं।

इस विषय में "प्राकृत विद्या" के वर्ष 15 संयुक्तांक 3-4 "शांतिसागर विशेषांक" के पृष्ठ 126 पर प्रकाशित निम्न संस्मरण ध्यान देने योग्य हैं "आचार्य श्री के भक्तों में अग्रगण्य बाबू तेजपाल काला नांदगांव लिखते हैं कि आज से करीब 30 वर्ष पहले कोल्हापुर के रुपड़ी गांव में पंचकल्याणक महोत्सव था। आचार्य श्री वहां आए थे। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. धन्नालाल जी कासलीवाल ने आचार्य श्री से कहा "महाराज आप किसी शासन देवता का आराधन कर ऐसा चमत्कार बताइए कि जिससे जैन धर्म के प्रति लोगों का आकर्षण हो"। आचार्य महाराज हंसने लगे। उन्होंने स्पष्ट कहा "पंडित जी इतने बड़े विद्वान् होकर भी ऐसी मिथ्यात्व पूर्ण बात हमारे लिए कैसे कहते हो? संसार शरीर और भोगों से विरक्त मुनियों के लिए शासन देवता की आराधना की बात कैसे संभव है? और क्या यह मिथ्यात्व नहीं है"। पंडित जी महाराज की बात सुनकर अवाक् रह गए।

एक बार एक वृद्ध पंडित आचार्य श्री से कहने लगा "उत्तर की जनता वक्र पद्धति की है। कभी दिगम्बर मुनियों का विहार जीवन में नहीं देखा। जब आपका संघ आता है तो उसको देखकर विद्वेषियों द्वारा विघ्न प्राप्त होगा तब धर्म पर संकट आ जायेगा। अतः यह उचित होगा कि पहले आप किसी देवता को सिद्ध कर लें। इससे कोई बाधा नहीं होगी, महाराज बोले 'मालूम होता है अब तक आप का मिथ्यात्व नहीं गया जो हमें आगम की आज्ञा के विरुद्ध सलाह देते हो'। पंडित जी बोले 'आपका भाव मेरे ध्यान में नहीं आया स्पष्टीकरण की प्रार्थना है।' महाराज श्री ने कहा 'क्या महाव्रती अव्रती को नमस्कार करेगा?' पंडित जी बोले 'नहीं, महाराज व्रती अव्रती को नमस्कार नहीं करेगा।' महाराज श्री बोले 'विद्या या देवता सिद्ध करने के लिए नमस्कार करना आवश्यक है। देवता अव्रती होते हैं। तब अव्रती को नमस्कार करना महाव्रती को दोषप्रद नहीं होगा? डरने की क्या बात है। हमारा पंच परमेष्ठी पर विश्वास है। उनके प्रसाद से विघ्न नहीं आयेगा।'।

संसार परिभ्रमण के दुःखों से छुड़ाने में समर्थ सर्वज्ञ वीतरागी देव, आरंभ परिग्रह से मुक्त गुरु और पर पदार्थों की आकांक्षाओं को छुड़ाकर आत्म रूचि जाग्रत कराने वाले सच्चे शास्त्र की शरण को प्राप्त करके भी क्षुद्र लौकिक आकांक्षाओं की पूर्ती के जघन्य उद्देश्य से सरागी देवी-देवताओं की पूजा आराधना में संलग्न रहने की अनादि कालीन भूल को नहीं मिटा सके तो आगामी जन्मों में अपने कल्याण की ऐसी अनुकूलताएं प्राप्त होना कठिन है।

परम कल्याणकारक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और संरक्षण के लिए मिथ्या देवी-देवताओं की पूजा उपासना के इस मिथ्यात्व के प्रचार से हमें स्वयं को और दूसरों को बचाना चाहिए।

मूलचंद लुहाड़िया

समाधि दिवस : आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज

आचार्य श्री विद्यासागर जी

कभी-कभी भावों की अभिव्यक्ति शब्दों के द्वारा अल्प समय में करना हो तो कठिनाई मालूम पड़ती है “मुनिपरिषन् मध्ये संनिषण्णं मूर्तिमिव मोक्षमार्गं मवाग् विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं निर्गथ आचार्यं वर्यम्”- मुनियों की सभा में बैठे हुए, वचन बोले बिना ही मात्र अपने शरीर की आकृति से मानो मूर्तिमान मोक्षमार्ग का निरूपण कर रहे हों, ऐसे आचार्य महाराज को किसी भव्य ने प्राप्त किया और पूछा कि भगवन्! किन्तु खलु आत्मने हितं स्यादिति? अर्थात् हे भगवन् आत्मा का हित क्या है। तब आचार्य महाराज ने कहा कि आत्मा का हित मोक्ष है। तब पुनः शिष्य ने पूछ लिया कि मोक्ष का स्वरूप क्या है? उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है?

इस बात का जवाब देने के लिए आचार्य पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि तत्त्वार्थ सूत्र का प्रारंभ हो जाता है और क्रमशः दस अध्यायों में जवाब मिलता है। ऐसा ही ये ग्रंथ हमारे जीवन से जुड़ा है। जो निर्ग्रन्थता का मूल स्रोत है।

क्या कहें और किस प्रकार कहें गुरुओं के बारे में क्योंकि जो भी कहा जायेगा वह सब सूरज को दीपक दिखाने के समान होगा। वह समुद्र इतना विशाल है कि अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर बताने का प्रयास; भावाभिव्यक्ति, उसका पार नहीं पा सकती।

एक कवि ने गुरु की महिमा कहने का प्रयास किया और कहा कि जितने भी विश्व में समुद्र हैं उनको दवात बना लिया जाये पूरा का पूरा पानी स्याही का रूप धारण कर ले और कल्पवृक्ष की लेखनी बनाकर सारी पृथ्वी को कागज बनाकर सरस्वती स्वयं लिखने बैठ जाये तो भी पृष्ठ कम पड़ जायेंगे, लेखनी और स्याही चुक जायेगी; पर गुरु की गुरुता-गरिमा का पार नहीं पाया जा सकता।

‘गुरु कुम्हार, शिष्य कुंभ है गढ़-गढ़ काढ़त खोट। भीतर हाथ पसार के, ऊपर मारत चोट। कुम्हार की भाँति मिट्टी को जो दलदल बन सकती है, बिखर सकती है, तूफान में धूल बनकर उड़ सकती है, घड़े का सुन्दर आकार देने वाले गुरु होते हैं। जो अपने शिष्य को घड़े के समान भीतर तो करुणा भरा हाथ पसार कर संभाले रहते हैं और ऊपर से निर्मम होकर चोट भी करते हैं।

बाहर से देखने वालों को लगता है कि घड़े के ऊपर प्रहार किया जा रहा है, लेकिन भीतर झाँक कर देखा जाये तो मालूम पड़ेगा कि कुछ और ही बात है। संभाला भी जा रहा है और चोट भी की जा रही है। दृष्टि में ऐसा विवेक, ऐसी जागरूकता

और सावधानी है कि चोट, खोट के अलावा, अन्यत्र न पड़ जाये। भीतर हाथ वहीं है जहाँ खोट है और जहाँ चोट पड़ रही है। यह सब गुरु की महिमा है।

किसी कवि ने यह भी कहा है कि “गुरु गोविंद दोउ खड़े, काके लागू पाँय, बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय” ॥ हमें तो लगता है “बताना” क्या यहाँ तो “बनाना” शब्द होना चाहिए। “गोविंद दिया बनाय”। वैसे ‘बताना’ भी एक तरह से ‘बनाना’ ही है। जब गणित की प्रक्रिया सामने आ जाती है तो उत्तर बताना आवश्यक नहीं रह जाता उत्तर स्वयं बन जाता है।

हम उन दिनों न तो उत्तर जानते थे, न प्रक्रिया या क्रिया जानते थे, हम तो नादान थे और उन्होंने (आचार्य ज्ञानसागर जी) हमें क्या-क्या दिया हम कह नहीं सकते। बस! इतना ही कहना काफी है कि हमारे हाथ उनके प्रति भक्ति भाव से हमेशा जुड़े रहते हैं।

गुरु की महिमा आज तक कोई कह नहीं सका। कबीर का दोहा सुना था- “यह तन विष की बेलड़ी, गुरु अमृत की खान। शीश दिये यदि गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान” ॥ कैसा अद्भुत भाव भर दिया। कितनी कीमत आंकी है गुरु की। हम इतनी कीमत चुका पाये तो भी कम है। देने के लिए हमारे पास क्या है? यह तन तो विष की बेल है जिसके बदले अमृत की खान, आत्मा मिल जाती है। यदि यह जीवन गुरु की अमृत-खान में समर्पित हो जाए तो निश्चित है कि जीवन अमृतमय हो जाएगा।

सोचो, समझो, विचार करो, इधर-उधर की बातें छोड़ो, शीश भी यदि चला जाए तो भी समझना कि सस्ता सौदा है। शीश देने से तात्पर्य गुरु के चरणों में अपने शीश को हमेशा के लिए रख देना, शीश झुका देना, समर्पित हो जाना। गुरु का शिष्य के ऊपर उपकार होता है और शिष्य का भी गुरु के ऊपर उपकार होता है, ऐसे परस्पर उपकार की बात आचार्यों ने लिखी है। सो ठीक ही है। गुरु शिष्य से और कुछ नहीं चाहता; इतनी अपेक्षा अवश्य रहती है कि जो दिशाबोध दिया है उस दिशा बोध के अनुसार चलकर शिष्य भी भगवान बन जाए। यही उपकार है शिष्य के द्वारा गुरु के ऊपर। कितनी करुणा है। कितना पवित्र भाव है।

“मैं” अर्थात् अहंकार को मिटाने का यदि कोई सीधा उपाय है तो गुरु के चरण-शरण। उनकी विशालता, मधुरता, गहराई और अमूल्य छवि का वर्णन भी नहीं कर सकते। गुरु ने

हमें ऐसा मंत्र दिया कि यदि नीचे की गहराई और ऊपर ऊंचाई नापना चाहो तो कभी ऊपर नीचे मत देखना बल्कि अपने को देखना। तीन लोक की विशालता स्वयं प्रतिबिंबित हो जायेगी।

“जो एगं जाणदि सो सव्वं जाणदि”- अर्थात् जो एक को यानी आत्मा को जान लेता है वह सबको सारे जगत को जान लेता है। धन्य है; ऐसे गुरु, जिन्होंने हम जैसे रागी, द्वेषी, मोही, अज्ञानी और नादान के लिए भगवान बनने का रास्ता प्रशस्त किया। आज कोई भी पिता अपने लड़के के लिए कुछ दे देता है तो बदले में कुछ चाहता भी है, लेकिन गुरु की महिमा देखो कि तीन लोक की निधि दे दी और बदले में किसी चीज की आकांक्षा नहीं है।

जैसे माँ सुबह से लेकर दोपहर तक चूल्हे के सामने बैठी धुआँ सहती रसोई बनाती है और परिवार के सारे लोगों को अच्छे ढंग से खिला देती है और स्वयं के खाने की परवाह नहीं करती। आप जब भी माँ की ओर देखेंगे तब वह कार्य में व्यस्त ही दिखेगी और देखती रहेगी कि कहाँ क्या कमी है? क्या-क्या आवश्यक है? क्या कैसा परोसना है? जिससे संतुष्टि मिल सके। पर गुरुदेव तो उससे भी चार कदम आगे होते हैं। हमारे भीतर कैसे भाव उठ रहे हैं? कौन सी अवस्था में, समय में, कौन से देश या क्षेत्र में आपके पैर लड़खड़ा सकते हैं। यह पूरी की पूरी जानकारी गुरुदेव को रहती है। और उस सबसे बचाकर वे अपने शिष्य को मोक्षमार्ग पर आगे ले जाते हैं। युगों-युगों से पतित प्राणि के लिए यदि दिशाबोध और सहारा मिलता है तो वह गुरु के माध्यम से ही मिलता है। गुरु का हाथ और साथ जब तक नहीं मिलता तब तक कोई ऊपर नहीं उठ सकता।

जैसे वर्षा होने से कठोर भूमि भी द्रवीभूत हो जाती है उसी प्रकार गुरु की कृपा होते ही भीतरी सारी की सारी कठोरता समाप्त हो जाती है और नम्रता आ जाती है। इतना ही नहीं बल्कि अपने शिष्य के भीतर जो भी कमियाँ हैं उनको भी निकालने में तत्पर रहने वाले गुरुदेव ही हैं। जैसे कांटा निकालते समय दर्द होता है लेकिन कांटा निकल जाने पर दर्द गायब होता है। उसी प्रकार कमियाँ निकालते समय शिष्य को दर्द होता है लेकिन कमियाँ निकल जाने पर शांति मिल जाती है। विषाक्तता बढ़ नहीं पाती। गुरुदेव की कृपा से अनंतकालीन विषाक्तता निकलती चली जाती है। हम स्वस्थ हो जाते हैं। आत्मस्थ हो जाते हैं, यही गुरु की महिमा है।

मरुभूमि के समान जीवन को भी हरा-भरा बनाने का श्रेय गुरुदेव को है। आज आप लोगों के द्वारा गुरु की महिमा सुनते-सुनते मन भर आया है। कैसे कहूँ? अथाह सागर की थाह कौन पा सकता है। उनके ऋण को चुकाया नहीं जा सकता। इतना ही है हम उनके कदमों पर चले जाए; उनके सच्चे प्रतिनिधि बनें और उनकी निधि को देख-देख कर उनकी सन्निधि का अहसास

करते रहें। यह अपूर्ण जीवन उनकी स्मृति से पूर्ण हो जाये।

धन्य है गुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज; धन्य है आचार्य शांतिसागर जी महाराज और धन्य है पूर्वाचार्य कुंदकुंद स्वामी आदि महान् आत्माएं जिन्होंने स्वयं दिगम्बरत्व को अंगीकार करके अपने जीवन को धन्य बनाया और साथ ही करुणा-पूर्वक धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया। जीवों को जीवन-निर्माण में सहारा दिया।

गुरुदेव ने अपनी काया की जर्जर अवस्था में भी हम जैसे नादान को, ना-समझ को, हम ज्यादा पढ़े-लिखे तो थे नहीं फिर भी मार्ग प्रशस्त किया। गुरु उसी को बोलते हैं जो कठोर को भी नम्र बना दे। लोहा काला होता है लेकिन पारसमणि के संयोग से स्वर्ण बनकर उज्वल हो जाता है। गुरुदेव हमारे हृदय में रहकर हमें हमेशा उज्वल बनाते जायेंगे, यही उनका आशीर्वाद हमारे साथ है।

हम यही प्रार्थना भगवान से करते हैं, भावना भाते हैं कि- “हे भगवान उस पवित्र पारसमणि के समान गुरुदेव का सान्निध्य हमारे जीवन को उज्वल बनाये। कल्याणमय बनाये उसमें निखार लाये। अभी हम मज्ञधार में हैं, हमें पार लगाये”। अपने सुख को गौण करके अपने दुख की परवाह न करते हुए दूसरों के दुख को दूर करने में, दूसरों में सुख-शांति की प्रस्थापना करने में जिन्होंने अपने जीवन को समर्पित कर दिया ऐसे महान् कर्तव्यनिष्ठ और ज्ञान-निष्ठ व्यक्तित्व के धारी गुरुदेव का योग हमें हमेशा मिलता रहे। हम मन, वचन, तन से उनके चरणों में हमेशा नमन करते रहें। वे परोक्ष भले ही हैं लेकिन जो कुछ भी हैं यह सब उनका ही आशीर्वाद है।

“गुरुदेव! अभी हमारी यात्रा पूरी नहीं हुई। आप स्वयं समय-समय पर आकर हमारा यात्रा-पथ प्रशस्त करते रहें, अभी स्वयं मोक्ष जाने के लिए जल्दी न करें, हमें भी साथ लेकर जायें”- ऐसे भाव मन में आते हैं। विश्वास है कि गुरुदेव हमेशा हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। उनको जो भाव रहा वह पूरा अपने जीवन में उतारने और उनकी भावना के अनुरूप आगे बढ़ने का प्रयास हम निरन्तर करते रहेंगे।

स्वयं मुक्ति के मार्ग पर चलकर हमें भी मुक्तिमार्गी बनाने वाले महान् गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमस्कार करते हैं। इस जीवन में और आगे भी जीवन में उन्हीं जैसी शांत-समाधि, उन्हीं जैसी विशालता, उन्हीं जैसी कृतज्ञता उन्हीं जैसी सहकारिता भीतर आये और हम उनके बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए धन्यता का अनुभव करते रहें। इसी भावना के साथ-

अज्ञानतिमिरांधानां, ज्ञानांजनशलाकाया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

‘समग्र’ से साभार

ज्ञान के सागर आचार्य श्री ज्ञानसागर

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन

यहाँ में जिस संत को नमन कर अपनी बात प्रारंभ करने जा रहा हूँ वह संत हैं आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के गुरु, जिन्होंने सुयोग्य शिष्य के वरण का इतिहास रचा और समाधि के पूर्व अपना पद त्याग कर अपने शिष्य को निर्यापक-आचार्य बनाकर नमोस्तु किया और सम्पूर्ण संसार को पद की महत्ता बतायी और बताया कि समाधि की साधना करनी हो तो आधि, व्याधि और उपाधि से विमुख होना ही पड़ता है। सारे संसार ने देखा कि एक कृशकाय संत किसतरह अपनी चर्या को निर्दोष बनाकर मारणान्तिकी सल्लेखनां जोषिता के पाठ भावना ही नहीं अपितु क्रियारूप में परिणत कर आत्मसुधारकों के लिए दृष्टांत बन जाता है। गुणसुन्दर वृत्तान्त में उन्हीं का लिखा यह पद्य कितना सार्थक प्रतीत होता है-

**नहीं दूसरे को सुधारने से सुधार हो पाता है।
अपने आप सुधारने से फिर सुधार दूसरा जाता है ॥**

आत्मसुधार के लिए अन्तिम प्रयास रूप में सल्लेखना का पालन करते हुए श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने 180 दिन की यम सल्लेखना धारण की थी। अन्तिम चार दिवस वे चतुर्विध आहार के त्यागी रहे। ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या (दि.1 जून 1973) को प्रातः 10 बजकर 50 मिनट पर देहोत्सर्ग किया। वे 80 वर्ष के थे।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज (पूर्वनाम ब्र. पं. भूरा मल जी) ने लगभग 500 वर्षों से जैन संस्कृत साहित्य लेखन की विच्छिन्न हो चुकी परम्परा का पुनः प्रवर्तन किया और अपनी लेखनी से प्रभूत साहित्य रचा, जो इस प्रकार है-

जयोदय महाकाव्य- 28 सर्गों में भरत चक्रवर्ती के सेनापति, हस्तिनापुर के राजा जयकुमार एवं उनकी पत्नि सुलोचना का जीवन चरित्र वर्णित है। यह एक विशालकाय संस्कृत महाकाव्य है जिसे संस्कृत महाकाव्य शिशुपालवध, किरातार्जुनीयम् एवं नैषधीयचरितम् के समकक्ष मानते हुये दि. 3-10-1995 को, 'जयोदय महाकाव्य राष्ट्रिय विद्वत्संगोष्ठी' में उपस्थित संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों ने उक्त वृहत्त्रयी में जयोदय महाकाव्य को और जोड़कर 'वृहत्चतुष्टयी' के अभिधान से संज्ञित किया। यह 20 वीं शती का सर्वश्रेष्ठ संस्कृत महाकाव्य है तथा जैनधर्म-दर्शन को संजोने वाला 14 वीं शती के बाद का प्रथम महाकाव्य है। इसके मंगलाचरण में रचनाकार श्री पं. भूरा मल जी ने लिखा है कि-

'तनोमि नत्वा जिनपं सुभक्तया जयोदय स्वाभ्युदयाय शकत्या।'

अर्थात् मैं जिन भगवान को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने आपके कल्याण के लिए अपनी शक्ति के अनुसार इस जयोदय महाकाव्य को लिख रहा हूँ।

वीरोदय महाकाव्य- भगवान महावीर के जीवन चरित का वर्णन 994 श्लोकों में 22 सर्गों में निबद्ध कर वीरोदय महाकाव्य लिखा गया है। वीरोदय शब्द वीर और उदय, इन दो शब्दों से मिलकर बना है।

सुदर्शनोदय महाकाव्य - इसमें स्वदार संतोष व्रती के रूप में प्रसिद्ध सेठ सुदर्शन की कथा का वर्णन है। इसमें 9 सर्ग एवं 481 श्लोक हैं।

समुद्रदत्त चरित (भद्रोदय)- अचौर्य व्रत की प्रभावना बढ़ाने वाली इस कृति में भद्रदत्त द्वारा ढोंगी सत्यघोष के भेद को खोलकर सत्यमेव जयते की भावना को बल दिया है। इस काव्य में 344 श्लोक एवं 9 सर्ग हैं।

दयोदय चम्पू - इसमें मृगसेन धीवर द्वारा अहिंसा व्रत के पालन की कथा वर्णित है। इस काव्य में सात लम्ब हैं।

सम्यक्त्वसार शतकम् - इस ग्रंथ में 103 श्लोक हैं जिनमें सम्यग्दर्शन की महिमा बतायी गयी है। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के अनुसार

सम्यक्त्वमेवानुवदामि तावद्विपत्ययोधेस्तरणाय नावः।

सयं समन्तादुपयोगि एतदस्माद्दशां साहजिकश्रियेडतः ॥

अर्थात् सम्यक्त्व विपत्तियों के सागर को तैरने, पार करने के लिए नाव है। हम सबके सहज कल्याण के लिये हर दृष्टि से उपयोगी है अतः मैं उसका ही गुणगान करता हूँ।

मुनि मनोरंजनाशीति- इस काव्य में 80 पद्य हैं। इसमें दिगम्बर मुनियों एवं आर्यिकाओं की आगमानुकूल चर्या का वर्णन है।

भक्ति संग्रह - इसमें संस्कृत भाषा में हिन्दी अनुवाद सहित 12 भक्तियों को रचा गया है। ये भक्तियाँ हैं- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्र भक्ति, आचार्य भक्ति, योगिभक्ति, परमगुरु भक्ति, चतुर्विंशति तीर्थकर, शांति भक्ति, समाधि भक्ति, चैत्य भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति और कायोत्सर्ग भक्ति।

हित सम्पादकम्- इस काव्य में 159 श्लोक हैं जिसमें

कुरीतियों के परिहार तथा हित संबद्धन रूप क्रियाओं को सबल रूप में प्रस्तुत किया है। उक्त संस्कृत रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी में भाग्य परीक्षा, ऋषभचरित, गुणसुन्दर वृत्तान्त, पवित्र मानव जीवन, कर्तव्यपथ प्रदर्शन, सचित्त विचार, सचित्र विवेचन, स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म, सरल जैन विवाह विधि, इतिहास के पन्ने तथा ऋषि कैसा होता है जैसी अमूल्य कृतियां रचीं। उन्होंने प्रवचनसार, समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, मानवधर्म, विवेकोदय, देवागम स्तोत्र, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि ग्रन्थों की टीका लिखी तथा शान्तिनाथ पूजन विधान का सम्पादन किया।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के संस्कृत साहित्य पर आचार्य श्री के ही प्रशिष्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा से उन्हीं के सानिध्य में 5 अखिल भारतीय विद्वत्संगोष्ठियां सांगानेर, अजमेर, ब्यावर, किशनगढ़ एवं जयपुर में आयोजित की गयीं जिनसे जनसामान्य को तो लाभ मिला ही, साथ ही संस्कृत के प्रति एक धीर, गंभीर, प्रौढ़, काव्यकलामर्मज्ञ महाकवि के रूप में प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापित हुई, जो गौरव की बात है।

आज यदि हम आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा उनके अवदान का मूल्यांकन करें तो पायेंगे कि उन्होंने जो भी दिया अमूल्य ही दिया। उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति हैं उनके शिष्य-आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, जिन्होंने अपनी निर्दोष दिग्म्बर चर्या से इस बीसवींशती के उत्तरार्द्ध में दिग्म्बरत्व का मान बढ़ाया और संत-स्वरूप को महिमामण्डित किया आज उनके 200 से अधिक शिष्य (मुनि, आर्यिकाएं, ऐलक, क्षुल्लक) भारतीय संत-काया के भाल बने हुए हैं। वे जहां जाते हैं लोग आस्तिक बन जाते हैं और जाते हैं तो अपने पीछे जिन-आस्था का विशाल सागर छोड़ जाते हैं। आज ऐसा कौन है जो गुरुवर ज्ञानसागर, उनके शिष्य विद्यासागर एवं प्रशिष्यों के प्रति नतमस्तक न हो ?

आचार्य ज्ञानसागर जी के सृजनात्मक सरोकार तीन बातों को लेकर रहे - (1) समाज (2) सामाजिकजन (3) धर्म। धर्म और दर्शन के प्रति आस्थावान व्यक्ति सदैव सुखी होता है। दयोदय काव्य में उनके यह वचन बड़े प्रेरक हैं -

**त्रिवर्गसंसाधन मन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्मः प्रवरोऽस्ति भूमौ नतं बिना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥**

**पापानुबन्धिनावर्थकामौ तनुमती मतौ
धर्म एवोद्धरेदेवं संसारादगहनाश्रयात् ॥**

अर्थात् जो मनुष्य होकर के धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों को नहीं साधता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। उन तीनों में भी धर्मपुरुषार्थ मुख्य माना गया है, उसे भी नहीं भूलना चाहिये। शेष दोनों में गलती हो जाये तो हो भी जाये, क्योंकि

अर्थ और काम, इन दोनों पुरुषार्थों की भी जड़ धर्म-पुरुषार्थ ही है। अर्थ और कामपुरुषार्थ, ये दोनों तो पापानुबन्धी हैं। इन दोनों के सम्पादन में मनुष्य को कुछ न कुछ पाप भी करना ही पड़ता है, किन्तु धर्म पुरुषार्थ ही एक ऐसा है जो निर्दोष होकर इस प्राणी को दुःखों से भरे हुए इस संसार से पार उतारने वाला होता है।

आचार्य श्री की लेखनी जब चलती है तो सहज ही नीति के पिटारे खुलते चलते हैं। दृष्टान्तों से भी वे अपने कथन को सशक्त बनाने में सिद्ध हस्त हैं।

‘गुणसुन्दर वृत्तान्त’ का पद्य कितना कुछ कह जाता है-

ज्ञानी कहते हैं होता है स्वार्थ-पूर्ण भाई-चारा।

जहाँ स्वार्थ में बड़ा आया हो जावे विरुद्ध सारा ॥

भरे पड़े हैं उदाहरण इसके दुनिया में हो साधो।

कौरव पाण्डव जूझ मरे इसको अपने दिल में साधो ॥

व्यसन मुक्ति के सम्बन्ध में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के विचार बड़े दूरगामी थे। आज सारे विश्व का बहुत सारा धन व्यसन मुक्ति के प्रचार-प्रसार पर व्यय करना पड़ रहा है क्योंकि धन की बहुलता और उसके अन्यायोपार्जित होने के कारण मांसभक्षण, मदिरापान, धूतक्रीड़ा (केसिनो), वेश्यावृत्ति, शिकार, फैशन परेड (कामोद्दीपन के नये रूप) आदि से बहुत सारा जन-समूह आकर्षित हो रहा है। ऐसे में आचार्य श्री के ये वचन कितने प्रभावी प्रतीत होते हैं -

धूत-मांस-मदिरा-पराङ्गना-पण्यदार-मृगया-चुराश्चना।

नास्तिकत्वमपि संहरेत्तरामन्यथा व्यसन सङ्कुला धरा ॥

(जयोदय महाकाव्य 2/125)

अर्थात् मनुष्य जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, परस्त्रीसंगम, वेश्यागमन, शिकार और चोरी तथा नास्तिकपना इन सबको त्याग दे, अन्यथा यह सारा भूमण्डल तरह-तरह की आपदाओं से भर जायेगा।

आज समाज में त्याग (दान) की बहुलता है किन्तु विधि, द्रव्य, पात्र आदि की विशेषता नहीं होने से अपेक्षित परिणाम भी नहीं मिलता। मन मना करता है और काया दान कर देती है, शरीरपूजा की चाह जो बलवती हो गयी है, किन्तु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी तो मन से किये गये त्याग को ही श्रेयस्कर मानते हैं -

त्यागोऽपि मनसा श्रेयात्र शरीरेण केवलम्।

मूलोच्छेदं विना वृक्षः पुनर्भवितुमर्हति ॥

अर्थात्, किसी वस्तु का मन से किया हुआ त्याग ही कल्याणकारी होता है, केवल शरीर से किया हुआ त्याग कल्याणकारी नहीं होता, क्योंकि मूल के उच्छेदन किए बिना

ऊपर से काटा गया वृक्ष पुनः पल्लवित हो जाता है।

एक बार आचार्य श्री विद्यासागर जी ने पूछा कि जब आप नहीं होंगे और मैं विहार करूँगा तब मुझसे धर्म की प्रभावना किस प्रकार हो सकेगी? तब आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने उत्तर दिया था कि -

‘अप्रभावना नहीं करना ही सबसे बड़ी प्रभावना है।’

वास्तव में ये पंक्तियाँ कितनी विधायी सोच को अभिव्यक्त करती हैं। उनका मानना था कि जहाँ विचार ठीक हुए कि फिर सुधार सहज है। यहीं वे संत की कोटि से उठकर एक संत दार्शनिक की कोटि पर विराजे प्रतीत होते हैं क्योंकि दार्शनिक तो मात्र विचार करता है जबकि संत-दार्शनिक उन विचारों को क्रियारूप में अपनाता भी है। आचार महान है और जिनका आचार महान होता है वे व्यक्ति भी महान होते हैं आचार्य ज्ञानसागर जी ऐसे ही महान संत थे। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि आज जैनधर्म के मुख्य पालक वणिक हैं। इसलिए वे कहा करते थे कि ‘सामने आयी पुस्तक को उठाकर यह नहीं सोचना कि इसमें क्या मिलेगा या यह कितने की है? नहीं तो वणिक के आगे नहीं बढ़ोगे।’ आज जो धर्म को धन के तराजू

पर तौलकर विद्या को तिरस्कृत करते हैं उन्हें आचार्य श्री की यह सीख सदा स्मरण रखनी चाहिए कि धर्म से पार तो हो सकता है व्यापार नहीं।

राजा यशोधर की कथा के माध्यम से आचार्य श्री का यह मार्मिक उपदेश ही हमारे लिए सार्थक है -

**‘जिनवाणी का है यही मित्र सुनो व्याख्यान
अभिरुचि परोपकार में निज हित का हो ध्यान।
निज हित का हो ध्यान करे फिर बिलम्ब कैसे,
तजे नहीं क्यों जगविभूति को विभूति जैसे।’**

इस तरह आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की वाणी हमें पग-पग पर सम्बोधती चलती है, गिरने से बचाती है। उनके जैसा संत संसार में कभी-कभी उत्पन्न होता है। आज यह हमारा सौभाग्य है कि जिन्होंने उनसे दीक्षा ली ऐसे आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज में उनकी चर्या को देख पा रहे हैं और यह भी सौभाग्य है कि उनके विपुल साहित्य में हम उनके हृदय को पढ़ पा रहे हैं।

घर

घर उनका है ही नहीं
वे रहते हैं इस शान से
जैसे बनाया गया है
घर उन्हीं के लिये।

और था जिनका घर
वे चले गये
छोड़कर
हमेशा हमेशा के लिये
किसी नये घर की तलाश में।

मैं सोचता हूँ
कितना कष्ट प्रद होता है
बार बार घर का बदलना
और बार बार का बनाना
नये घर का बसाना।

मेरे आराध्य
अब तो इतना समर्थ बनादे
कि हो जाऊँ मुक्त
बार बार बनाने और बदलने से
किसी भी घर के।

के.आर. पथिक

172, दुर्गा मार्ग, विदिशा

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की जीवन यात्रा : आँखों देखी

सुशीला पाटनी

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरुषों एवं नर-पुंगवों को जन्म दिया है। इन नररत्नों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शौर्यता के क्षेत्र में अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं। जैन धर्म भी भारत भूमि का एक प्राचीन धर्म है, जहाँ तीर्थंकर, श्रुतकेवली, केवली भगवान के साथ-साथ अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं सन्तों ने इस धर्म का अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एवं आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस 19-20 वीं शताब्दी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परमपूज्य, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य 108 श्री शांतिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा में आचार्य श्री वीरसागर जी, आचार्य श्री शिवसागर जी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुए। मुनि श्री ज्ञानसागर जी, आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से वि.सं. 2016में खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा लेकर अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर सत्तारूढ़ हो गये थे। आप शिवसागर आचार्य महाराज के प्रथम शिष्य थे।

मुनि श्री ज्ञानसागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) में दिगम्बर जैन के छाबड़ा कुल में सेठ सुखदेवी जी के पुत्र श्री चतुर्भुज जी की धर्मपत्नी घृतावरी देवी की कोख से हुआ था। आपके बड़े भ्राता श्री छगनलाल जी थे तथा दो छोटे भाई और थे तथा एक भाई का जन्म तो पिता श्री के देहान्त के बाद हुआ था। आप स्वयं भूरामल के नाम से विख्यात हुए। प्रारम्भिकशिक्षा गाँव के प्राथमिक विद्यालय में हुई। साधनों के अभाव में आप आगे विद्याध्ययन न कर अपने बड़े भाई जी के साथ नौकरी हेतु गयाजी (बिहार) आ गये। वहाँ 13-14 वर्ष की आयु में एक जैनी सेठ की दुकान पर आजीविका हेतु कार्य करते रहे। लेकिन आपका मन आगे पढ़ने के लिए छटपटा रहा था संयोगवश स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने हेतु गयाजी (बिहार) आये। उनके प्रभावपूर्ण कार्यक्रमों को देखकर युवा भूरामल के भाव भी विद्या प्राप्ति हेतु वाराणसी जाने के हुए। विद्या-अध्ययन के प्रति आपकी तीव्र भावना एवं दृढ़ता देखकर आपके बड़े भ्राता ने 15 वर्ष की आयु में आपको वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

श्री भूरामल जी बचपन से ही कठिन परिश्रमी अध्यवसायी, स्वावलम्बी एवं निष्ठावान थे। वाराणसी में आपने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्याध्ययन किया और संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहन अध्ययन कर शास्त्री परीक्षा पास की। जैन धर्म से संस्कारित श्री

भूरामल जी न्याय, व्याकरण एवं प्राकृत ग्रन्थों को जैन सिद्धान्तानुसार पढ़ना चाहते थे, जिसकी उस समय वाराणसी में समुचित व्यवस्था नहीं थी। आपका मन क्षुब्ध हो उठा, परिणामतः आपने जैन साहित्य, न्याय और व्याकरण को पुनर्जीवित करने का भी दृढ़ संकल्प लिया। अडिग विश्वास, निष्ठा एवं संकल्प के धनी श्री भूरामल जी ने कई जैन एवं जैनेतर विद्वानों से जैन वाङ्मय की शिक्षा प्राप्त की। वाराणसी में रहकर ही आपने स्याद्वाद महाविद्यालय से 'शास्त्री' की परीक्षा पास कर आप पं. भूरामल जी नाम से विख्यात हुए। वाराणसी में ही आपने जैनाचार्यों द्वारा लिखित न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त एवं आध्यात्म विषयों से अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया।

बनारस से लौटकर आपने अपने ही ग्रामीण विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया, लेकिन साथ में, निरन्तर साहित्य साधना एवं साहित्य लेखन के कार्य में भी अग्रसर होते गये। आपकी लेखनी से एक से एक सुन्दर काव्यकृतियाँ जन्म लेती रही। आपकी तरुणाई विद्वता और आजीविकोपार्जन की क्षमता देखकर आपके विवाह के लिए अनेकों प्रस्ताव आये, सगे सम्बन्धियों ने भी आग्रह किया। लेकिन आपने वाराणसी में अध्ययन करते हुए ही संकल्प ले लिया था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर माँ सरस्वती और जिनवाणी की सेवा में, अध्ययन-अध्यापन तथा साहित्य सृजन में ही अपने आपको समर्पित करूँगा। इस तरह जीवन के 50 वर्ष साहित्य साधना, लेखन, मनन एवं अध्ययन में व्यतीत कर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया। इसी अवधि में आपने दयोदय, भद्रोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय आदि साहित्यिक रचनार्यें संस्कृत तथा हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा के महाकाव्यों की रचना की। परम्परा को जीवित रखने वाले मूर्धन्य विद्वानों में आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काशी के दिग्गज विद्वानों की प्रतिक्रिया थी "इस काल में भी कालीदास और माघकवि की टक्कर लेने वाले विद्वान हैं, यह जानकर प्रसन्नता होती है।" इस तरह पूर्ण उदासीनता के साथ, जिनवाणी माँ की अविरत सेवा में आपने गृहस्थाश्रम में ही जीवन के 50 वर्ष पूर्ण किये। जैन सिद्धान्त के हृदय को आत्मसात करने हेतु आपने सिद्धान्त ग्रन्थों श्री धवल, महाधवल, जयधवल, महाबन्ध आदि ग्रन्थों का विधिवत स्वाध्याय किया। "ज्ञान भारं क्रिया बिना" क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरूप है - इस मंत्र को जीवन में उतारने हेतु आप त्याग मार्ग पर प्रवृत्त हुए।

सर्वप्रथम 52 वर्ष की आयु में सन् 1947 में आपने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीर सागरजी महाराज से सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार किये। 54 वर्ष की आयु में आपने पूर्णरूपेण गृहत्याग कर आत्मकल्याण हेतु जैन सिद्धान्त के गहन अध्ययन में लग गये। सन् 1955 में 60 वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से ही रेनवाल में क्षुल्लक दीक्षा लेकर ज्ञानभूषण के नाम से विख्यात हुए। सन् 1959 में 62 वर्ष की आयु में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से खानियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा अंगीकार कर 108 मुनि श्री ज्ञानसागर जी के नाम से विभूषित हुए। और आपको आचार्य श्री का प्रथम शिष्य होने का गौरव प्राप्त हुआ। संघ में आपने उपाध्याय पद के कार्य को पूर्ण विद्वता एवं सजगता से साथ सम्पन्न किया। रूढ़िवाद से

कोसों दूर मुनि ज्ञानसागर जी ने मुनिपद की सरलता और गंभीरता को धारण कर मन, वचन और काय से दिगम्बरत्व की साधना में लग गये। दिन रात आपका समय आगमानुकुल मुनिचर्या की साधना, ध्यान, अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन में व्यतीत होता रहा। फिर राजस्थान प्रान्त में ही विहार करने निकल गए। उस समय आपके साथ मात्र दो-चार त्यागी व्रती थे, विशेष रूप से ऐलक श्री सन्मत्तिसागर जी, क्षुल्लक श्री संभवसागर जी व सुखसागर जी तथा एक-दो ब्रह्मचारी थे। मुनिश्री उच्च कोटि के शास्त्र-ज्ञाता, विद्वान एवं तात्त्विक वक्ता थे। पंथवाद से दूर रहते हुए आपने सदा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी और एक सदगृहस्थ का जीवन जीने का आह्वान किया।

आर. के. हाऊस, मदनगंज-किशनगढ़

जैन अल्पसंख्यक समुदाय घोषित होने से समाज में व्याप्त भ्रान्ति का स्पष्टीकरण

कुछ जैन बंधु वर्तमान पत्रों के माध्यम से भ्रमित प्रचार कर रहे हैं कि जैन समुदाय अल्पसंख्यक नहीं है अपितु वैदिक धर्म का अनुयायी है इसलिये न तो हमें अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाये और न ही उसकी सुविधाएँ।

इस तरह का प्रचार या तो पूर्ण जानकारी के अभाव एवं दुष्प्रचार की भावना से अथवा भ्रान्तियों से प्रमुख रूप से ग्रसित होने के कारण किये जाते हैं। पूर्ण जानकारी के अभाव में की गई ऐसी टिप्पणियाँ सम्पूर्ण समुदाय का मत नहीं हो सकता।

‘जैनधर्म, वैदिकधर्म की एक शाखा है’, ऐसा कहना अथवा समझना भी सर्वथा अनुचित है। जैनधर्म विशुद्ध रूप से स्वतंत्र धर्म होते हुए भी न जाने क्यों, कुछ जैन बांधव इस प्रकार का गलत प्रचार कर रहे हैं, जो समझ से परे है।

हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति स्व. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे महान् दार्शनिक, शिक्षाविद् थे, ने भी मान्य किया है कि, ‘जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है।’

हजारों वर्षों से वैदिक एवं जैन धर्मावलम्बी एकत्रित रूप से रहते आ रहे हैं। अतः उनके रहन-सहन, बोल-चाल एवं व्यवहार में एक-दूसरे की संस्कृति का समन्वय होना स्वाभाविक है। रीति-रिवाज में भी समानता परिलक्षित हो सकती है। और संभवतः इस कारण से वे लोग ऐसी मनोभावना बना लें कि हम दोनों धर्मों में कोई अंतर नहीं है। यह आपका स्वयं का मत हो सकता है, जन-साधारण की आम सहमति इसे कदापि नहीं मानी जा सकती। समुदाय या समाज समग्र होता है। वह व्यक्ति विशेष अथवा एक की

धारणा पर नहीं चलता। जैनधर्म भी वैदिकधर्म की एक शाखा है, यह कैसे हो सकता है? जब कि वैदिकधर्म के विद्वान भी मान्य करते हैं कि वैदिकधर्म और जैनधर्म दोनों अलग-अलग धर्म हैं। इस बात का देश के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक ‘डिस्कवरी ऑफ इंडिया’ में भी उल्लेख किया है। गहराई से जानें एवं अध्ययन करें तो सभी जैन बंधुओं, समुदायों के लोगों को यह ज्ञात हो जावेगा कि उनका धर्म वैदिकधर्म से भिन्न है। अतः अपनी अनभिज्ञता एवं स्वार्थ के लिये संपूर्ण जैन समुदाय समाज धर्म को ही वैदिक धर्म बनाने या मानने की भूल न करें। ऐसा कोई भी कदम सम्पूर्ण समाज के लिये अहितकारी होगा, हमारी अखंडता के प्रति कुठाराघात होगा।

गौरतलब है कि किसी भी समुदाय को अल्पसंख्यक होने का दर्जा भारतीय संविधान में निहित है। भारतीय संविधान की धारा 25 से धारा 30 के तहत सभी धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति सकारात्मक रूख रखने का अधिकार राज्य सरकारों को भारतीय गणतंत्र में दिया गया है, जिसके तहत ही समुदायों को अल्पसंख्यक का दर्जा घोषित हुआ है। यह जैनसमाज को प्राप्त एक संवैधानिक कवच है। अपनी नादानी एवं भ्रान्तियों अथवा दुर्भावना से इसे कुंठित न होने दिया जावे। देश के सर्वोच्च न्यायालय ने इसे राज्य सरकारों के अधिकारों की परिधि में निर्देशित किया है, तब फिर भ्रान्ति क्यों? राज्य सरकारों अपने-अपने राज्य के अल्पसंख्यक समुदाय के उत्थान में कुछ कर रही हैं, तो वह हमें शिरोधार्य होना चाहिये।

संपादक

रात्रि-भोजन त्याग

स्व. पं. मिलापचन्द्र कटारिया

ऐसा कौन प्राणी है जो भोजन बिना जीवित रह सके। जब तक शरीर है उसकी स्थिति के लिए भोजन भी साथ है। और तो क्या वीतरागी निःस्पृही साधुओं को भी शरीर कायम रखने के लिए भोजन की आवश्यकता पड़ती ही है, तो भी जिस प्रकार विवेकवानों के अन्य कार्य विचार के साथ सम्पादन किये जाते हैं उस तरह भोजन में भी योग्यायोग्य का ख्याल रखा जाता है। कौन भोजन शुद्ध है, कौन अशुद्ध है, किस समय खाना, किस समय नहीं खाना आदि विचार ज्ञानवानों के अतिरिक्त अन्य मूढ़ जन के क्या हो सकते हैं। कहा है - “ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः” वास्तव में जो मनुष्य खाने-पीने मौज उड़ाने में ही अपने जीवन की इतिश्री समझे हुए हैं उन्हें तो उपदेश ही क्या दिया जा सकता है, किन्तु नरभव को पाकर जो हेयोपादेय का ख्याल रखते हैं और अपनी आत्मा को इस लोक से भी बढ़कर परजन्म में सुख पहुँचाने की जिनकी पवित्र भावना है उनके लिए ही सब प्रकार का आदेश उपदेश दिया जाता है। तथा ऐसों ही के लिए आगमों की रचना कार्यकारी है।

आगम में श्रावकों के आठ मूलगुण कहे हैं, जिनमें रात्रि भोजन त्याग भी एक मूलगुण है जैसा कि निम्न श्लोक से प्रगट है-

आप्तपंचनुतिर्जीवदया सलिलगालनम्।

त्रिमद्यादि निशाहारोदुंबराणां च वर्जनम्॥

-धर्म संग्रह श्रावकाचार

इसमें देव वंदना, जीवदया पालन, जल छानकर पीना, मद्य, मांस, मधु का त्याग, रात्रि-भोजन त्याग और पंचोदंबर फल त्याग, ये आठ मूलगुण बताये हैं। जब रात्रि भोजन त्याग श्रावकों के उन कर्तव्यों में है जिन्हें मूल (खास) गुण कहा गया है तब यदि कोई इसका पालन नहीं करता तो उसे श्रावक की कोटि में गिना जाना क्यों कर उचित कहा जायेगा? यदि कोई कहे कि रात्रिभुक्ति त्याग तो छठवीं प्रतिमा में है इसका समाधान यह है कि - छठवीं प्रतिमा को कई ग्रंथकारों ने तो दिवामैथुन त्याग नाम से कही है। हाँ! कुछ ने रात्रिभुक्ति त्याग नाम से भी वर्णन की है, जिसका मतलब यही हो सकता है कि इसके पहिले रात्रि भोजन त्याग में कुछ अतीचार लगते थे सो इस छठवीं प्रतिमा में पूर्ण रूप से निरतिचार त्याग हो जाता है। यदि ऐसा न माना जावे तो रात्रि भोजन त्याग को मूलगुणों में क्यों कथन किया जावे बल्कि वसुनन्दि श्रावकाचार में तो यहाँ तक कहा है कि -रात्रि भोजन करने वाला ग्यारह प्रतिमाओं में

से पहिली प्रतिमा का धारी भी नहीं हो सकता है यथा-

एयादसेसु पढगं विजदो णिसिभोयणं कुणं तस्स।

ठाणं ण ठाइ तम्हा णिसिभुत्तं परिहरे णियमा ॥ ३१४ ॥

-बसुनन्दि श्रावकाचार

छपी हरिवंश पुराण हिन्दी टीका के पृष्ठ ५२९ में कहा है कि-

“मद्य, मांस, मधु, जुआ, वेश्या, परस्त्री, रात्रि भोजन, कंदमूल इनका तो सर्वथा ही त्याग करना चाहिए। ये भोगोपभोग परिमाण में नहीं हैं।” मतलब कि हरएक श्रावक को चाहे वह किसी श्रेणी का हो रात्रि भोजन का त्याग अत्यंत आवश्यक है। यहाँ भोजन से मतलब लड्डू आदि खाद्य; इलायची, तांबूल आदि स्वाद्य; रबड़ी आदि लेह्य; पानी आदि पेय इन चारों प्रकार के आहारों से है। रात्रि के समय उक्त चार प्रकार के आहार के त्याग को रात्रि भोजन त्याग कहते हैं। शास्त्रकारों ने तो यहाँ तक जोर दिया है कि सूर्योदय और सूर्यास्त से दो घड़ी पूर्व भोजन करना भी रात्रि भोजन में शुमार किया गया है। यथा-

वासरस्य मुखे चांते विमुच्य घटिकाद्वयम्।

योऽशनं सम्यगाधत्ते तस्यानस्तमितव्रतम्॥

पद्मपुराण में कथन है-जिस समय लक्ष्मण जी जाने लगे तो उनकी नव विवाहिता वधू वनमाला ने कहा कि - “हे प्राणनाथ मुझ अकेली को छोड़ कर जो आप जाने का विचार करते हो तो मुझ विरहिणी का क्या हाल होगा?” तब लक्ष्मण जी क्या उत्तर देते हैं सुनिये-

स्ववधूं लक्ष्मणः प्राह मुंच मां वनमालिके।

कार्ये त्वां लातुमेष्यामि देवादिशपथोऽस्तु मे ॥ २८ ॥

पुनरूचे तयेतीशः कथमप्यप्रतीतया।

ब्रूहि चेन्नैमि लिप्येऽहं रात्रिभुक्तेरघैस्तदा ॥ २९ ॥

भावार्थ- हे वनमाले मुझे जाने दो, अभीष्ट कार्य के हो जाने पर मैं तुम्हें लेने के लिए अवश्य आऊँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगर मैं अपने वचनों को पूरा न करूँ तो जो दोष हिंसादि के करने से लगता है उसी दोष का मैं भागी होऊँ।

सुनकर वनमाला लक्ष्मण जी से बोली-मुझे आपके आने में फिर भी संदेह है इसलिए आप यह प्रतिज्ञा करें कि-“यदि मैं न आऊँ तो रात्रि भोजन के पाप का भोगने वाला होऊँ”।

देखा पाठक! रात्रि भोजन का पाप कितना भयंकर है।

प्रीतंकर के पूर्व भव के स्याल के जीव ने मुनीश्वर के उपदेश से रात्रि में जल पीने का त्याग किया था जिसके प्रताप से वह मुहा पुन्यवान् समृद्धिशाली प्रीतंकर हुआ था। वास्तव में बात सोलह आना ठीक है कि रात्रि भोजन अनेक दोषों का घर है। जो पुरुष रात्रि का भोजन करता है वह समस्त प्रकार की धर्म क्रिया से हीन है, उसमें और पशु में सिवाय सींग के कोई भेद नहीं है। जिस रात्रि में सूक्ष्म कीट आदि का संचार रहता है मुनि लोग चलते-फिरते नहीं, भक्ष्याभक्ष्य का भेद मालूम नहीं होता, आहार पर आये हुए बारीक जीव दीखते नहीं ऐसी रात्रि में दयालु श्रावकों को कदापि भोजन नहीं करना चाहिए। जगह-जगह जैन ग्रंथों में स्पष्ट निषेध होते हुए भी आज हमारे कई जैनी भाई रात्रि में खूब माल उड़ाते हैं। कई प्रांतों के जैनियों ने तो ऐसा नियम बना रखा है कि रात्रि में अन्न की चीज न खानी- शेष पेड़ा, बरफी आदि खाने में कोई हर्ज ही नहीं समझते। न मालूम ऐसा नियम इन लोगों ने किस शास्त्र के आधार पर बनाया है। खेद है जिन कलाकंद, बरफी आदि पदार्थों के मिठाई के प्रसंग के अधिक जीव घात होना संभव है उन्हें ही उदरस्थ करने की इन भोले आदमियों ने प्रवृत्ति कर अपनी अज्ञानता और जिह्वा लंपटता का खूब परिचय दिया है। श्री सकलकीर्ति जी ने श्रावकाचार में साफ कहा है कि-

**भक्षितं येन रात्रौ च स्वाद्यं तेनान्नमंजसा ।
यतोऽन्नस्वाद्ययोर्भेदो न स्याद्ब्रान्नादियोगतः ॥ ८३ ॥**

अर्थ- जो रात्रि में अन्न के पदार्थों को छोड़कर पेड़ा, बरफी आदि खाद्य पदार्थों को खाते हैं वे भी पापी हैं क्योंकि अन्न और स्वाद्य पदार्थों में कोई भेद नहीं है। तथा और भी कहा है कि-

**दंशकीटपतंगादि सूक्ष्मजीवा अनेकधाः ।
स्थालमध्ये पतन्त्येव रात्रिभोजनसंगिनाम् ॥ ७८ ॥
दीपकेन बिना स्थूला दृश्यन्ते नांगिनः क्वचित् ।
तदुद्योतवशादन्ये प्रागच्छन्तीव भाजने ॥ ७९ ॥
पाकभाजनमध्ये तु पतन्त्येवांगिनो ध्रुवम् ।
अन्नादिपचनाद्रात्रौ म्रियन्तेऽन्तराशयः ॥ ८० ॥
इत्येवं दोषसंयुक्तं त्याज्यं संभोजनं निशि ।
विषान्नमिव निःशेषं पापभीतैर्नरैः सदा ॥ ८१ ॥
भक्षणीयं भवेन्नैव पत्रपूगीफलादिकम् ।
कीटाढ्यं सर्वथा दक्षैर्भूरिपापप्रदं निशि ॥ ८४ ॥
न ग्राह्यं प्रोदकं धीरैर्विभावर्या कदाचन ।
तृट्शांतये स्वधर्माय सूक्ष्मजन्तुसमाकुलम् ॥ ८५ ॥
चतुर्विधं सदाहारं ये त्यजन्ति बुधा निशि ।
तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासस्य जायते ॥ ८६ ॥**

अर्थ- रात्रि में भोजन करने वालों की थालियों में डाँस, मच्छर, पतंगे आदि छोटे-छोटे जीव आ पड़ते हैं। यदि दीपक न जलाया जाय तो स्थूल जीव भी दिखाई नहीं पड़ते और यदि दीपक जला लिया जाय तो उसके प्रकाश से और अनेक जीव आ जाते हैं। भोजन पकते समय भी उस अन्न की वायु गंध चारों ओर फैलती है अतः उसके कारण उन पात्रों में जीव आकर पड़ते हैं। पापों से डरने वालों को ऊपर लिखित अनेक दोषों से भरे हुए रात्रि भोजन को विष मिले अन्न के समान सदा के लिए अवश्य त्याग कर देना चाहिए। चतुर पुरुषों को रात्रि में सुपारी, जावित्री, तांबूल आदि भी नहीं खाने चाहिए क्योंकि इनमें अनेक कीड़ों की संभावना है अतः इनका खाना भी पापोत्पादक है। धीर वीरों को दया धर्म पालनार्थ प्यास लगने पर भी अनेक सूक्ष्म जीवों से भरे जल को भी रात्रि में कदापि न पीना चाहिए। इस प्रकार रात्रि में चारों प्रकार के आहार को छोड़ने वालों के प्रत्येक मास में पंद्रह दिन उपवास करने का फल प्राप्त होता है।

रात्रि भोजन के दोष के वर्णन में जैन धर्म के ग्रंथों के ग्रंथ भरे पड़े हैं। यदि उन सबको यहाँ उद्धृत किया जावे तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ हो सकता है। अतः हम भी इतने से ही विश्राम लेते हैं।

रात्रि भोजन खाली धार्मिक विषय ही नहीं है किन्तु यह शरीर शास्त्र में भी बहुत अधिक संबंध रखता है। प्रायः रात्रि भोजन से आरोग्यता की हानि होने की भी काफी संभावना हो सकती है। जैसे कहा है कि-

**मक्षिका वमनाय स्यात्स्वरभंगाय मूर्द्धजः ।
यूका जलोदरे विष्टिः कुष्ठाय गृहकोकिली ॥**

-धर्म संग्रह श्रावकाचार (मेधावीकृत)

अर्थ- रात्रि में भोजन करते समय अगर मक्षिका खाने में आ जाय तो वमन होती है, केश खाने में आ जाये तो स्वर भंग, जूँवा खाने में आ जाय तो जलोदर और छिपकली खाने में आ जाय तो कोढ़ उत्पन्न होता है। इसके अलावा सूर्यास्त के पहिले किया हुआ भोजन जठराग्नि की ज्वाला पर चढ़ जाता है-पच जाता है इसलिए निद्रा पर उसका असर नहीं होता है। मगर इसके विपरीत करने से रात को खाकर थोड़ी सी देर में सो जाने से चलना फिरना नहीं होता अतः पेट में तत्काल का भरा हुआ अन्न कई बार गंभीर रोग उत्पन्न कर देता है। डाक्टरों नियम है कि भोजन करने के बाद थोड़ा-थोड़ा जल पीना चाहिए यह नियम रात्रि में भोजन करने से नहीं पाला जा सकता है क्योंकि इसके लिए अवकाश ही नहीं मिलता है। इसका परिणाम अजीर्ण होता है। हर एक जानता है कि अजीर्ण सब रोगों का घर होता है। "अजीर्ण प्रसवा रोगाः" इस प्रकार हिंसा की बात को

छोड़कर आरोग्य का विचार करने पर भी सिद्ध होता है कि रात्रि में भोजन करना अनुचित है।

इस तरह क्या धर्मशास्त्र और क्या आरोग्य शास्त्र सब ही तरह से रात्रि भोजन करना अत्यंत बुरा है। यही कारण है जो इसका जगह-जगह निषेध जैन धर्म शास्त्रों में किया गया है जिनका कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया गया है। अब हिंदू ग्रंथों में भी कुछ उदाहरण रात्रि भोजन के निषेध में नीचे लिखकर लेख समाप्त किया जाता है क्योंकि लेख कुछ अधिक बढ़ गया है।

अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।

अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कंडेयमहर्षिणा ॥

-मार्कंडेयपुराण

अर्थ- सूर्य के अस्त होने के पीछे जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान कहा है यह वचन मार्कंडेय ऋषि का है।

महाभारत में कहा है कि-

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणम्।

ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

चत्वारिनरकद्वारं प्रथमं रात्रि भोजनम्।

परस्त्रीगमनं चैव संधानानंतकायकम् ॥ २ ॥

ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयन्ति सुमेधसः।

तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥ ३ ॥

नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्न युधिष्ठिर।

तपस्विनां विशेषेण गृहिणां ज्ञानसंपदाम् ॥ ४ ॥

अर्थ- चार कार्य नरक के द्वार रूप हैं। प्रथम रात्रि में भोजन करना, दूसरा परस्त्री गमन, तीसरा संधाना (अचार) खाना और चौथा अनन्तकाय कन्द मूल का भक्षण करना ॥ २ ॥ जो बुद्धिमान एक महीने तक निरन्तर रात्रि भोजन का त्याग करते हैं उनको एक पक्ष के उपवास का फल होता है। ॥ ३ ॥ इसलिए हे युधिष्ठिर ज्ञानी गृहस्थ को और विशेष कर तपस्वी को रात्रि में पानी भी नहीं पीना चाहिए ॥ ४ ॥ जो पुरुष मद्य पीते हैं, मांस खाते हैं, रात्रि में भोजन करते हैं और कन्दमूल खाते हैं उनकी तीर्थयात्रा, जप, तप सब वृथा है ॥ १ ॥ और कहा है कि-

दिवसस्याष्टमे भागे मंदीभूते दिवाकरे।

एतन्नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम् ॥

मुहूर्तानं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।

नक्षत्रदर्शानां नक्तं नाहं मन्ये गणाधिप ॥

भावार्थ- दिन के आठवें भाग को जब कि दिवाकर मंद हो जाता है (रात होने के दो घड़ी पहले के समय को) नक्त कहते हैं। नक्त व्रत का अर्थ रात्रि भोजन नहीं है। हे गणाधिप

बुद्धिमान् लोग उस समय को नक्त बताते हैं जिस समय एक मुहूर्त (दो घड़ी) दिन अवशेष रह जाता है। मैं नक्षत्र दर्शन के समय को नक्त नहीं मानता हूँ। और भी कहा है कि-

अंभोदपटलच्छन्ने नाश्रन्ति रविमण्डले।

अस्तंगते तु भुंजाना अहो भानोः सुसेवकाः ॥

मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतकं जायते किल।

अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथम् ॥

अर्थ- यह कैसा आश्चर्य है कि सूर्य भक्त जब सूर्य मेघों से ढक जाता है तब तो वे भोजन का त्याग कर देते हैं। परन्तु वही सूर्य जब अस्त दशा को प्राप्त होता है तब वे भोजन करते हैं। स्वजन मात्र के मर जाने पर भी जब लोग सूतक पालते हैं यानी उस दशा में अनाहारी रहते हैं तब दिवानाथ सूर्य के अस्त होने के बाद तो भोजन किया ही कैसे जा सकता है? तथा कहा है कि-

नैवाहुति न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम्।

दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥

अर्थ- आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन, दान और खास करके भोजन रात्रि में नहीं करना चाहिए।

कूर्मपुराण में भी लिखा है कि-

न द्रुहयेत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्।

न नक्तं चैव भक्षीयाद् रात्रौ ध्यानपरो भवेत् ॥

२७वां अध्याय ६४५ वां पृष्ठ

अर्थ- मनुष्य सब प्राणियों पर द्रोह रहित रहे। निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे तथा रात को भोजन न करे और ध्यान में तत्पर रहे और भी ६५३वें पृष्ठ पर लिखा है कि-

“आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुंजीत प्राडमुखे नरः”।

भावार्थ- सूर्य हो उस समय तक दिन में गुरु या बड़े को दिखाकर पूर्व दिशा में मुख करके भोजन करना चाहिए।

इस विषय में आयुर्वेद का मुद्रा लेख भी यही है कि-

हृन्नाभिपद्मसंकोशचंद्रोचिरपायतः।

अतो नक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीवादानापि ॥

भावार्थ- सूर्य छिप जाने के बाद हृदय कमल और नाभिकमल दोनों संकुचित हो जाते हैं और सूक्ष्म जीवों का भी भोजन के साथ भक्षण हो जाता है इसलिए रात में भोजन नहीं करना चाहिए।

रात्रि भोजन का त्याग करना कुछ भी कठिन नहीं है। जो महानुभाव यह जानते हैं कि- “जीवन के लिए भोजन है भोजन के लिए जीवन नहीं” वे रात्रि भोजन को नहीं करते हैं।

‘जैन निबन्ध रत्नावली’ से साभार

णमो लोए सव्वसाहूणं

स्व. पं. लालबहादुर जी शास्त्री

जैनों में नमस्कार मंत्र की बड़ी महिमा है तथा इसे अनादिनिधन मन्त्र स्वीकार किया है। यहाँ तक कि समस्त अनादिनिधन श्रुत के अक्षर भी इसमें समाविष्ट हैं। पूजन के प्रारंभ में इस मन्त्र की स्तुति का भी निर्देश है। 'पवित्र या अपवित्र अवस्था में भी जो इस मन्त्र का ध्यान करता है वह सब पापों से छुटकारा प्राप्त करता है। अच्छे या बुरे स्थान में हो अथवा किसी भी अवस्था में हो इस मन्त्र का स्मरण करने वाला भीतर-बाहर सदा पवित्र है। यह मन्त्र कभी किसी अन्य मन्त्र से पराजित नहीं होता, संपूर्ण विघ्नों का नाशक है और सभी मंगलों में प्रथम मंगल है।' इस प्रकार मन्त्र के माहात्म्य को देखकर प्रत्येक श्रावक साधु इस मन्त्र का स्मरण करता है। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि चलते-फिरते उठते-बैठते आते-जाते सदा इस मन्त्र का स्मरण करना चाहिए। जैनों में जितने भी सम्प्रदाय है वे सभी इस मन्त्र का समादर करते हैं। धर्मध्यान के भेदों में पदस्थ नाम का भी एक धर्मध्यान है। इस ध्यान में णमोकार मन्त्र के पदों को लेकर ध्यान किया जाता है। आचार्य नेमीचंद्र लिखते हैं- 'पणतीससोलछप्पण चउदुगमेगं च जवह ज्झाएह। परमेट्ठिवाचयाणं अण्णं पि गुरूवएसेण ॥' अर्थात् परमेष्ठी के वाचक पैंतीस सोलह छः पाँच चार दो एक अक्षर रूप मन्त्र पदों का ध्यान करना चाहिए।

ऐसे महामन्त्र को लेकर आज अनेक लोग उसके शुद्ध-अशुद्ध होने की चर्चा करते हैं। यद्यपि लिखावट या छापे की अशुद्धि से अशुद्धि का आ जाना कोई बड़ी बात नहीं है। वे अशुद्धियाँ किसी प्रकार शुद्ध की जा सकती हैं। लेकिन मूलतः ही मन्त्र को अशुद्ध मानकर उसको शुद्ध करने का प्रयत्न करना वैसा ही है जैसे कोई टिटहरी चित्त लेटकर अपने चारों पैरों से आकाश को गिरने से रोकने का प्रयत्न करे। सुना है जैनों के एक सम्प्रदाय में इस पर बड़ी चर्चा चली कि इस मन्त्र का अंतिम पद अशुद्ध है। अंतिम पद है- 'णमो लोए सव्व साहूणं' का अर्थ है लोक में सब साधुओं को नमस्कार हो। इस पर किन्हीं लोगों का कहना है कि यहाँ साधु के लिए 'सव्व' विशेषण उचित नहीं है, क्योंकि 'णमो लोए सव्व साहूणं' का अर्थ होता है लोक में सब साधुओं को नमस्कार हो। इसका अभिप्राय यह हुआ कि लोक में जितने भी साधु हैं। चाहे वे दिगम्बर, श्वेताम्बर हों, रक्ताम्बर हों, पीताम्बर हों, जटाधारी

हों, मुंडित हों, कापालिक हों या किसी भी वेष के धारण करने वाले हों उन सबको नमस्कार है। जबकि आचार्य समन्तभद्र के अनुसार 'श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम्। त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥' अर्थात् जो सच्चे देवशास्त्रगुरु है उनका तीन मूढ़ता रहित आठ मद रहित तथा अष्टांग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। लेकिन जब सब साधुओं को नमस्कार किया जाता है इससे झूठे देव शास्त्र गुरु का निरसन नहीं होता। अतः यह 'सव्व' पद नहीं होना चाहिए। इस पर कुछ लोगों का कहना है कि साधु कहा ही उसे जाता है जो २८ मूलगुणों को धारण करता है। अतः 'णमो लोए सव्व साहूणं' का अर्थ होता है, 'लोक में संपूर्ण २८ मूलगुणधारियों (साधुओं) को नमस्कार है।

इसके उत्तर में पूर्व पक्ष का कहना है कि यदि 'सव्व साहूणं' से मतलब उक्त जैन साधुओं से है तो फिर सभी जगह अर्थात् पाँचों परमेष्ठियों में भी सव्व विशेषण प्रयोग होना चाहिए। फिर तो णमोकार मन्त्र का रूप इस प्रकार होगा 'णमो सव्व अरिहंताणं, णमो सव्व सिद्धाणं णमो सव्व आयरियाणं' इत्यादि।

उत्तर पक्ष इसका उत्तर इस प्रकार देता है कि 'सव्व' विशेषण को पाँचों परमेष्ठियों में लगाने की आवश्यकता नहीं है। 'सव्व साहूणं' के साथ जो सव्व विशेषण है उसी को सब जगह पाँचों परमेष्ठियों के साथ लगा लेना चाहिए। पर यह उत्तर भी समुचित नहीं बैठता। 'सव्व' शब्द यदि अरिहंत शब्द के साथ प्रयुक्त होता तो बाद में सब परमेष्ठियों के साथ लग सकता था, परन्तु जब वह स्पष्ट अंतिम साधुपद का विशेषण है तो उसे पिछले सभी पदों का विशेषण माना जाय यह कुछ युक्तियुक्त नहीं लगता।

अतः वास्तविक स्थिति क्या है उसका हम यहाँ खुलासा करते हैं :-

परमेष्ठी पाँच है अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। इनमें अरिहंत परमेष्ठी के अंतर्गत कोई किसी प्रकार का भेद नहीं है। जब भेद नहीं है तब वहाँ 'सव्व' विशेषण की कोई सार्थकता नहीं है। अरिहंतों के ४६ मूलगुण होते हैं वे ४६ मूलगुण सबमें एक ही प्रकार के होते हैं कम अधिक नहीं होते। जो जिस मूलगुण का रूप है वही सभी अरिहंतों के सभी मूलगुणों का

रूप है अतः अरिहंत व्यक्ति के रूप में अनेक हैं, किन्तु गुणों के रूप में सब एक ही हैं। अतः अरहंतों को नमस्कार हो इसमें सभी अरहंत व्यक्ति अन्तर्भूत हो जाते हैं अतः वहाँ 'सर्व' शब्द की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार सिद्ध व्यक्ति रूप से अनन्त हैं गुणों के रूप में वे सब एक ही हैं क्योंकि आठ गुण जो एक सिद्ध में हैं वे ही आठ गुण उसी प्रकार अनन्तान्त सिद्धों में हैं अतः सिद्धों को नमस्कार हो यह कहने से अनन्तान्त सिद्धों को नमस्कार हो जाता है अतः यहां भी सिद्धों के साथ 'सर्व' विशेषण की आवश्यकता नहीं है।

तीसरे परमेष्ठी आचार्य परमेष्ठी हैं- आचार्य परमेष्ठी के ३६ मूल गुण होते हैं। शिष्यों को दीक्षा निग्रह अनुग्रह इनका मुख्यतः काम है। इनके ३६ मूलगुणों के पालन में किसी प्रकार का कोई अपवाद नहीं है यथावत् पालने ही होते हैं। अतः आचार्यों के अन्तर्गत कोई भेद नहीं है। समयानुसार वे आचार्य पद छोड़ भी सकते हैं, लेकिन उन्हें अपने मूल गुण पालन में कोई छूट नहीं दी जा सकती। इसलिए आचार्यों को नमस्कार करने में 'सर्व' पद की कोई आवश्यकता नहीं है। आचार्यों को नमस्कार हो, यह कहने में सभी आचार्यों का ग्रहण अपने आप ही हो जाता है।

चौथे परमेष्ठी उपाध्याय हैं- उपाध्याय शब्द का अर्थ है 'उपेत्य अधीयन्ते यस्तात् सः' अर्थात् जिनके निकट बैठ पढ़ा जाय वे उपाध्याय हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार उपाध्याय में परमेष्ठियों में कोई अन्तर नहीं है सब एक ही हैं। उपाध्याय के २५ मूलगुण भी माने हैं। वे २५ मूलगुण ११ अंग और १४ पूर्व हैं। इन दोनों का जोड़ २५ होता है। यह २५ प्रकार का श्रुत द्वादशांग (१२ अंग) में गर्भित है। यह द्वादशांग श्रुत दो प्रकार का है एक द्रव्य श्रुत दूसरा भावश्रुत।

संपूर्ण द्रव्य श्रुत का उस द्रव्य श्रुत के भाव का जिसको ज्ञान है वह उपाध्याय परमेष्ठी है। उमा स्वामी आचार्य की प्रशंसा में उन्हें 'श्रुत केवलदेशीय' कहा गया है इसका अभिप्राय यही है कि उन्हें पूर्ण द्रव्य श्रुत का ज्ञान नहीं था फिर भी उन्हें भावश्रुत का अत्यधिक ज्ञान था। इसलिए श्रुत केवली कल्प थे। इस प्रकार द्वादशांग का सारभूत विशिष्ट ज्ञान जिनको होता है वे अन्य मुनियों की दीक्षा देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी हैं। उपाध्याय

परमेष्ठी में भी कोई अवान्तर भेद नहीं है। इसलिए उपाध्याय में ये 'सर्व' विशेषण की आवश्यकता नहीं है।

अब पाँचवाँ नम्बर आता है साधु परमेष्ठी का। साधु के २८ मूलगुण होते हैं। इसके साथ ही इन्हें उत्तरगुण भी पालन करने होते हैं। लेकिन इनके पालन करने में सभी साधु एक जैसे नहीं होते। किसी के मूलगुण पलते हैं तो उत्तरगुण नहीं पलते और मूलगुण में भी दोष लगता है अतः इन साधुओं में परस्पर भिन्नता है। यहाँ पूछा जा सकता है कि जब मूलगुण नहीं पलते तब उन्हें साधु ही नहीं कहना चाहिए। लेकिन शास्त्रकारों ने उन्हें साधु माना है। अतः इन भावलिंगी साधुओं के शास्त्रकारों ने पाँच भेद किए हैं जिनके पाँच नाम इसप्रकार हैं- 1) पुलाक, 2) वकुश, 3) कुशील, 4) निर्ग्रन्थ, 5) स्नातक।

- 1) इनमें पुलाक मुनि वे हैं जो उत्तरगुणों की भावना नहीं रखते और व्रतों में भी कभी-कभी दोष लगाते हैं वे पुलाक हैं।
- 2) वकुश व्रतों का अखण्ड पालन करने पर भी शरीर, उपकरण आदि की विभूषण में अनुरक्त हैं।
- 3) कुशील दो प्रकार के हैं। प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील। प्रतिसेवना- कुशील जो मूलगुणों, उत्तरगुणों का पालन करते हैं शरीर उपकरण आदि की मूर्छा से रहित नहीं है वे प्रतिसेवना कुशील हैं। कषाय कुशील- जिन्होंने अन्य कषायों को वश में कर लिया है, किन्तु संज्वलन कषाय के अधीन हैं वे कषाय कुशील हैं।
- 4) निर्ग्रन्थ- क्षीण मोही १२वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ हैं यहाँ ग्रन्थ का अर्थ अन्तरंग परिग्रह कषाय से है।
- 5) स्नातक- परिपूर्ण ज्ञानी (केवलज्ञानी) स्नातक हैं। इस तरह साधु परमेष्ठी के ये पाँच भेद जिनके पृथक्-पृथक् नाम हैं जो गुण आदि की मात्रा से एक दूसरे से पृथक् हैं उन सबका ग्रहण करने के लिए साधु परमेष्ठी के साथ 'सर्व' विशेषण दिया है। अर्थात् 'णमो लोए सर्वसाहूणं' इस पद में 'सर्व साधुओं को नमस्कार हो' इसका अर्थ यह है कि लोक में उक्त पाँच प्रकार के साधुओं को नमस्कार हो, अन्य परमेष्ठियों में इस प्रकार गुण भेद को लेकर कोई भेद नहीं है अतः उनके साथ 'सर्व' विशेषण नहीं दिया है।

जिनभाषित के लिए प्राप्त दान राशि

स्व. विमलादेवी के स्वर्गवास होने पर उनकी पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री सेठ विजयकुमार जैन, सेठ हवेली, मथुरा द्वारा 500/- रु. प्राप्त।

भगवान् महावीर : व्यक्ति नहीं संस्कृति

अरुण जैन

भगवान् महावीर ने अपने जीवन की शुरूआत ठीक उसी तरह की थी, जिस तरह एक नवजात शिशु करता है। वैसा ही सूर्योदय उस समय हुआ होगा, जैसा आज होता है, वैसी ही सुबह हुई होगी, जैसी आज होती है। वही दूध, पानी, दही, अन्न, पोषण, वस्त्र, मकान आदि वे सब भी उस समय अजूबे नहीं थे। एक नवजात शिशु के प्रथम रूदन, क्रन्दन, किलकारियों से, पालने से, धरती पर घुटने के बल रेंगने से, अंगुली के सहारे चलने तक की यात्रा जैसी आज होती है, वैसे ही यात्रा उनकी रही होगी। फिर क्या अन्तर था, उनमें और उनके समवयस्कों में जो एक महावीर बन गये और दूसरे उनकी ओर निहारते ही रह गये। अवश्य कोई न कोई मौलिकता रही होगी, तभी तो वह आज भी हमारी सांस्कृतिक विरासत के द्वार पर दस्तक दे रही है। सच यही है कि महावीर एक व्यक्ति नहीं, अपितु एक संस्कृति हैं। इस संस्कृति में जातिवाद, धर्मवाद, रंगभेद की नीति का प्रवेश नहीं है, क्योंकि वहाँ भावनात्मक एकता और विश्व-बंधुत्व के उद्घोष बुलंद हैं। वहाँ निःशस्त्रीकरण का मूल्यांकन हो चुका है। इस संस्कृति में हिंसा और आतंकवाद को अपनी जड़ें फैलाने का अवसर नहीं मिल सकता, क्योंकि भय और संदेह के अंहकार को निगलने वाली मानवी विश्वास की किरणें फैल रही हैं। इस संस्कृति से सारे विश्व को अध्यात्म धर्म, अहिंसा और चरित्र की प्रेरणा मिलती है।

एक राजकुमार के रूप में जन्म लेकर भी उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश हिस्सा श्रमशील, स्वावलंबी किसानों की तरह बिताया। वे जितने लाड़-प्यार से पले उतने ही संघर्षों से खेले। उन्हें भौतिक सुख-सुविधाओं की ओर खींचने का जितना प्रयास हुआ, वे उतने ही विरक्त होते गये। तीस वर्ष के गृहस्थ जीवन में तो वे घर पर रहकर भी, घर में नहीं थे। अपनी इच्छाओं पर उन्होंने बचपन से ही संन्यास ले लिया था। उनकी आँखों की तटस्थ आत्मीयता और संकल्प की फौलादी दृढ़ता देखकर बड़े-बड़े लोग भी स्तब्ध रह जाते थे। बारह वर्षों के निरंतर साधना काल में उन्होंने जो कुछ सहा, वह महावीर ही सह सकता है। कहते हैं, संगम देव ने उनको एक रात में जितने कष्ट दिये, उनसे साधारण आदमी बीस बार मृत्यु को प्राप्त हो सकता था। कष्टों की ज्वाला से घिरने पर भी उनके चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी और ना मन में कोई प्रतिक्रिया। उनका यह निष्कंप जीवन ही अपने आप में एक अबूझ पहेली है।

भगवान् महावीर के जीवन में किसी प्रकार का आग्रह

परिलक्षित नहीं होता। आग्रहहीनता के कारण ही वे कहीं रुके नहीं। एकांत में रहकर वे जितने आत्मलीन रहे, भीड़ में उतने ही आत्मस्थ होकर रहे। मौन उनकी साधना का अभिन्न अंग था। लंबे आवास और ध्यान के प्रसंग करते समय वे जितने अंतर्मुखी रहते, भोजन करते समय भी उनकी अन्तर्मुखता कम नहीं हुई। अपने अनाग्रही और ऋजु दृष्टिकोण से वे उस अर्हता तक पहुँच गये, जिसने उनको अर्हत के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। जैन दर्शन में अर्हत का अपना गरिमापूर्ण स्थान है। पंचपरमेष्ठी में सिद्धों से पहिले अर्हतों को नमन किया गया है। अर्हतों की प्राथमिकता के इस क्रम में न तो कोई मनगढ़ंत कल्पना है और न ही घुणाक्षर - न्याय की प्रासंगिकता है। लोक चेतना के जागरण में अर्हतों की जो महती भूमिका है, उसके कारण ही वे पांच पदों में पुरोधा का आसन ग्राहण कर पाये। भगवान् महावीर ने अपने समय जिनरूढ़ एवं अर्थहीन मूल्यों को बदला है, उनमें प्रमुख दास प्रथा, जातिवाद, छुआछूत, आदि ऐसे मूल्य थे, जिनकी जड़ें गहरी थीं। प्रकृति की देन के संरक्षण हेतु भगवान् महावीर स्वामी ने प्राणीमात्र की रक्षा हेतु 'अहिंसा परमोधर्मः' का ध्वज फहराया। उन्होंने कहा कि प्रकृति की इस देन का उपयोग करो, 'जोड़ो वहीं, तोड़ो नहीं' यही अपरिग्रह है। चोरी छुपे इसका लोभवश निजी स्वार्थ के लिए नाश करना ही उनके 'अस्तेय' की शिक्षा का मूल मंत्र है। 'ब्रह्मचर्य' क्या है। अपने अर्थात् 'ब्रह्म' को पहिचानने की पद्धति। आज के भौतिकवादी युग में हम अपने सद्गुरु श्री महावीर स्वामी के उपदेशों को, अपनी युगों से चली आ रही जीवन शैली और भारतीय संस्कृति को विस्मृत ना करें- 'परस्परोग्रहो जीवानाम्'।

भारतीय दर्शन के क्षितिज पर ढाई हजार वर्ष पूर्व एक नाम उभरकर आया, जो कोई अलौकिक नहीं था और कालान्तर में अलौकिक रहा ही नहीं, काल के लम्बे अन्तराल में सैकड़ों-हजारों अनुयायियों ने उस नाम को स्वयं पर ओढ़ा है। नाम को ओढ़ना आरोपित करना एक बात है और उसे सही अर्थ में जीना दूसरी बात है।

महावीर भगवान् ने महावीर को ओढ़ा नहीं था। वे वर्द्धमान नाम लेकर आए और वीरता की मशाल प्रज्वलित कर महावीर बन गये।

सदस्य-मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग
800, गोलबाजार, जबलपुर-482002

शरीर, मन और मस्तिष्क को क्रियाशील बनाएँ

सुरेश जैन, आई.ए.एस. (से.नि.)

हम अपने मन को जीतने की भावना रखें। हारने की प्रवृत्ति को अपने मन से निकाल दें। अपने मन को आशावादी बनाएँ। आशावादी प्रवृत्ति महत्वपूर्ण संजीवनी है। आशा और विश्वास के सहारे हम भयानक तूफान में चट्टान की भाँति अडिग बने रहते हैं। असफलता, पराजय और दुःखद क्षणों में सहर्ष मुस्कराते हुए आगे बढ़ते हैं। आशावादिता हमें बहिर्मुखी बनाती है। स्वस्थ, प्रसन्न और सफल होने में सहयोगी बनती है। दूसरी ओर निराशा हमें अंतर्मुखी बनाती है। विषाद और अकेलेपन को जन्म देती है। आशावादी व्यक्तित्व प्रत्येक घटना के सकारात्मक पक्षों पर विचार कर निर्णय लेता है और आगे बढ़ता है। निराशावादी व्यक्तित्व प्रत्येक घटना के नकारात्मक पहलुओं का विचार कर निर्णय नहीं ले पाता है और पीछे रह जाता है।

यदि जीवन में आगे बढ़ना है तो लक्ष्य हमेशा ऊँचा बनाएँ। उद्देश्य कभी छोटा नहीं होना चाहिए। योजना भी छोटी नहीं होना चाहिए। छोटे लक्ष्य और छोटी योजना से उत्साह नहीं जागता है। वे कभी पूर्ण नहीं होते। बड़ी योजनाएं और बड़े लक्ष्य पूरे होते हैं क्योंकि उनके पीछे उत्साह और प्रेरणा का बल होता है। विश्व के प्रख्यात चिंतकों ने यही कहा— ऊपर की ओर चलो, लक्ष्य को बड़ा बनाते चलो।

शरीर, मन और मस्तिष्क को क्रियाशील बनायें। अपने मस्तिष्क को नियमित रूप से माँजते रहें। बौद्धिक विकास के लिए प्रारंभ में सरल और धीरे-धीरे जटिल प्रक्रिया अपनानी चाहिए। कोई भी काम सीखें या करें। उसकी शुरुआत हमेशा सरल चीजों से की जानी चाहिए और धीरे-धीरे कठिन चीजों की ओर बढ़ना चाहिए। इससे मस्तिष्क एक निश्चित गति से काम करता है और उस पर एक साथ अतिरिक्त दबाव नहीं पड़ता है। इससे हम कहीं बेहतर ढंग से चीजों को समझ पाते हैं या कर पाते हैं।

एक फुटबाल खिलाड़ी की गेंद सीधे जाकर गोल के पास गिरती है। भले ही दूरी लम्बी हो। वायुयान का पायलट आकाश में उड़कर हमें रोमांचित कर देता है। यह मस्तिष्क, आँख, हाथ और शरीर का समन्वित सदुपयोग करने से ही संभव हो पाता है। हमारा लक्ष्य सही होना चाहिए और लक्ष्य की प्राप्ति में हमारा मस्तिष्क, शरीर और हाथ समन्वित और पूर्ण सहयोग दें। इस

अद्भुत प्रक्रिया से कठिन से कठिन खेल को जीतना अधिक सरल होता है। हम अपने लक्ष्य के अनुरूप अपनी बुद्धि का प्रयोग करें।

बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रतिदिन अपनी सोच एवं कार्यों के बीच के अंतर को जानने और कम करने का प्रयास करें। अपनी सोच के अनुरूप अपने कार्य को करें। हम स्वयं का मूल्यांकन करें और अपने मस्तिष्क को पैना और प्रभावी बनाएँ। अपने भविष्य की योजनाओं के बारे में सोचें। सरलता से उन्हें व्यवहार में लाने का भी प्रयास करें। जिस समय यह आभास हो जाए कि अपनी सोच के अनुसार लक्ष्य प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हो रही है, तब यह समझिए कि अपने मस्तिष्क का पूरा उपयोग हो रहा है। इससे हम अपनी वास्तविक योग्यता को समझ सकते हैं और सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने में सक्षम हो सकते हैं।

हम सदैव कोई न कोई रचनात्मक कार्य करते रहें। हम सदैव कुछ नया सीखने का प्रयास करें। हम अपने मस्तिष्क की क्रियाशीलता बनाए रखें। हमारा मस्तिष्क व्यायाम से शक्ति प्राप्त करता है, विश्राम से नहीं। जब आप के पास कोई बौद्धिक कार्य करने को न हो तो ऐसे समय खाली बैठने के बजाय कुछ पढ़ें या बच्चों को पढ़ाएँ। नई भाषा या कोई नया काम करना सीखें। आस-पास की चीजों और घटनाओं को ज्यादा से ज्यादा जानने का प्रयत्न करें। यह भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

शरीर के प्रत्येक अंग के लिए क्रियाशीलता आवश्यक है। व्यायाम के बिना शरीर सुस्त पड़ जाता है। यदि कुछ मानसिक व्यायाम न किया जाए, तो धीरे-धीरे हमारी स्मृति कमजोर हो जाती है। दिमाग की धार को पैनी करने के लिए मानसिक व्यायाम आवश्यक है। पूरे दिन में आपने क्या किया, किससे मिले, डायरी में लिखें। मौखिक हिसाब-जोड़, गुणा और भाग करने से स्मृति पटल पर दबाव पड़ता है और हमारी गणितीय क्षमता बढ़ती है। पढ़ने में रूचि है, तो लेखक का नाम, किताब का नाम और पेज नम्बर याद करने की कोशिश करें। अंताक्षरी खेलें। दिमाग को करवाएँ थोड़ी मेहनत और उसे कुछ नया करने को मजबूर करें। नए रास्ते से दफ्तर जाएँ, मस्तिष्क को 20-30 मिनट शांत रखें और पुरानी बातों को याद करें। कुछ कलात्मक करें। घर की सामान्य चीजों को लेकर उनके तरह-

तरह के उपयोग के बारे में सोचें। इस प्रक्रिया से आपके दिमाग को नई तरकीबें सूझेंगीं। बहुत सी चीजों के बारे में सोचने पर दिमाग में उथल-पुथल होगी और वह पहले से ज्यादा क्रियाशील बना रहेगा।

गुणवत्तापूर्ण जीवन एवं सफलता प्राप्त करने के लिए हम दूसरों को सदैव कुछ न कुछ दें। दूसरों को देने से ही हमें प्राप्ति होती है। सभी के साथ ईमानदारी पूर्ण व्यवहार करें। सभी को उच्च स्तरीय सम्मान दें। दूसरों की सहायता प्राप्त करें। सभी व्यक्तियों की चिंता करें। उन्हें सहयोग दें। उन्हें सहानुभूतिपूर्वक सुनें। उन्हें प्यार करें। उन्हें भावनात्मक सहयोग दें। आगे बढ़ने

के लिए उन्हें प्रेरित करें। किसी विशिष्ट क्षेत्र का हमें, विशेष अध्ययन एवं विस्तृत अनुभव होता है। हम अपने विशेष ज्ञान एवं अनुभव का लाभ दूसरों को दें। अन्य व्यक्तियों को अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोग दें। हम अपना लक्ष्य प्राप्त करने में उनका सहयोग प्राप्त करें। सदैव सेवा की भावना रखें। अन्य व्यक्तियों की सेवा से ही हम महानता और महान सफलताएं प्राप्त करते हैं।

30, निशात कालोनी, भोपाल
दूरभाष: 0755-2555533

ग्रंथ समीक्षा : आत्मबोध

१०८ आ. विरागसागर महाराज के सुशिष्य विशुद्धसागर जी की अनमोल कृति 'आत्मबोध' साभार प्राप्त हुई, हमारे संस्था के ग्रंथालय के लिए जो अत्यंत उपयुक्त रहेगी।

यह कृति मुनि विशुद्धसागरजी की प्रगतिशील, अनुभूतिशील जीवन का लिपीबद्ध व्यक्तीकरण है। वास्तव में उनकी डायरी में मनन-चिंतन का उदात्त प्रतिबिंब देखने से वाचक हर्षविभोर होकर अपनी लघुता अनुभवता है।

श्रमणचर्या इस ग्रंथ में चर्चा की बात न रहकर चर्या के लिए प्रेरणा देती है। प्रो. रतनचंद्रजी ने इनकी महती एक दृष्टि डालकर वाचकवृंद का ध्यान किताब पढ़ने के लिए आकर्षित किया है। वर्तमान में श्रमणचर्या करते समय वे स्वयं तारण-तरणहार बनकर काष्ठ नौका के रूप में हमारे लिए आधार बने हैं। मुनि विशुद्धसागरजी ने डायरी में स्वयं को उद्बोधन हर पन्ने में किया है न किसी दूसरे को सुधारने के लिए किंतु खुद का निरीक्षण, परीक्षण, समीक्षण करके सच्चे सुधारक रहे हैं। एक कवि कहता है।

**'रे सुधारक जगत की चिंता मत कर यार,
तेरे दिल में जग बसे पहले ताही सुधार'**

यह कृति मुनि विशुद्धसागरजी के उन्नत, भाव, सत्य, शिव, सुंदर जीवन की आत्मकथा है, जिसमें अति प्रशंसा का अहमगंड या स्वयं के प्रति न्यूनगंड का स्पर्श नहीं है। साथ ही तत्वज्ञान का संतुलित निवेदन है। छोटे-छोटे विषय लेकर महान आशय चिंतन के द्वारा व्यक्त किये हैं। शीर्षक बड़े आकर्षक हैं। जैसे धन की पूजा धनत्रयोदशी में की

जाती है। उससे अंधश्रद्धा का निर्मूलन हो जाता है और आगम नेत्र द्वारा सही दिशा मिलती है।

हर शीर्षक रहस्यपूर्ण है। जो वाचक को आंतरिक चेतना जगाती है। ग्रंथ के हर एक पन्ने को नीचे की सूक्ति सुभाषित द्वारा सजाया है। वह सुविचार दिनभर मन में विचार के तरंग के रूप में उठते हैं। उनके आत्मबोध द्वारा सभी भव्य आत्माओं को बोध हो जाता है। खुद को खुदा समझकर (परमात्मा) उद्धोधन होने से सभी भव्य आत्मायें उद्धोधित हो जाती हैं।

ग्रंथरूप में प्रकाशित करने वाले सभी सहयोगी धन्यवाद के पात्र हैं ही किंतु मुनि विशुद्धसागरजी में पंचपरमेष्ठी एक रूप सौंदर्य निहारने पर हम इसी भव में नहीं किंतु भव-भव में कृतज्ञ-ऋणी रहेंगे। कृति का अंतरंग सद्विचारों से परिपूर्ण है। वैसा ही बहिरंग भी। भ. शांतिनाथ के दर्शन लेते ही मन आकर्षित हो जाता है।

मूल्य स्वाध्याय, मनन, चिंतन है। लेकिन इस अर्थयुग में वाचक अवमूल्य न करे किंतु अपना अमूल्य जीवन के क्षण देकर कृतार्थ रहे।

नोट:- संस्था में तीन ग्रंथालय हैं। सामूहिक वाचना के लिए ज्यादा प्रति मिले तो वाचक, स्वाध्यायी, अध्यापक को ज्यादा लाभ होगा। श्राविका मासिक में 'आत्मबोध' ग्रंथ का मराठी अनुवाद क्रम से प्रकाशित कर रहे हैं।

ब्र. विद्युल्लता शहा
अध्यक्षा : श्राविका संस्थानगर, सोलापुर

प्राकृतिक चिकित्सा है : स्वस्थ जीवन जीने की कला

डॉ. वन्दना जैन

प्राकृतिक चिकित्सा एक चिकित्सा पद्धति ही नहीं वरन् एक संपूर्ण जीवन दर्शन है व स्वस्थ जीवन जीने की कला है। प्राकृतिक चिकित्सा अलग है और प्राकृतिक जीवन अलग है इसमें प्राकृतिक चिकित्सा तो डूबते को तिनके का सहारा है, बहुत ही श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धति है। पर वह सिर्फ बीमारों के लिये है पर प्राकृतिक जीवन दर्शन अलग है, वह सभी के लिये है। तथा इसमें प्रकृति के समीप रहना सिखाया जाता है। क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा प्रकृति से ही उद्भूत हुई है। प्रकृति के पंच महाभूत तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का सम्यक प्रयोग करते हुए, प्रकृति के नियमों का पालन करने से व्यक्ति सही अर्थों में स्वस्थ रहता है।

प्राकृतिक चिकित्सा सर्वाधिक प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है। जीवन के प्रारंभ व विकास के साथ ही प्राकृतिक चिकित्सा का उद्भव एवं विकास हुआ। उनके प्रचलित लोकोक्तियों में आया है, जैसे- 'सौ दवा एक हवा', 'बिन पानी सब सून्', 'जल ही जीवन है', 'मिट्टी पानी धूप हवा' सब रोगों की एक दवा, ये सब प्राकृतिक चिकित्सा की प्राचीनता को दर्शाती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में पंचभूत तत्वों तथा आहार सुधार व योगाभ्यास के द्वारा इलाज किया जाता है। इस पद्धति में आहार को ही औषधि माना गया है। अतः अन्य किसी तरह की दवाइयों का प्रयोग नहीं किया जाता है तथा 'रोगी का उपचार औषधालय में नहीं वरन् भोजनालय में होता है' इस युक्ति को चरितार्थ किया जाता है तथा द्वितीय क्रम में योगासन, प्राणायाम व उपचार जैसे मिट्टी, पुट्टी, नेतिकुंजल, एनिमा बस्ती तथा विभिन्न स्नानों आदि के द्वारा न सिर्फ रोगी को ही स्वस्थ किया जाता है वरन् अपने स्वास्थ्य को सदैव स्थिर बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार हमारा शरीर ही दवाओं का कारखाना है, लीवर 500 प्रकार की दवाईयों को बनाता है पेनक्रियाज, दर्जनों दवाइयों को पैदा करता है, इसीलिए इस पद्धति में बाहरी दवाओं के प्रयोग को हतोत्साहित किया जाता है। जिस चीज से शरीर बना है वही पंचभूत तत्व मिलकर उसे ठीक कर सकते हैं। जैसे हम अपने आसपास के वातावरण में स्वयं को सहज महसूस करते हैं ठीक वैसे ही हमारा शरीर भी

करता है। तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों से मुक्ति तथा स्वस्थ समाज के लिए आम आदमी को अपने आहार-विहार, आचार-विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन करके अपने आपको स्वस्थ रखना सिखाया जाता है। सीधी, सरल एवं स्वाभाविक सच्चाई यह है कि समस्त रोगों का कारण आहार-विहार एवं विचार के खराब होने से शरीर में विजातीय पदार्थ एवं वात, पित्त, त्रिदोष का एकत्रित एवं प्रकृषित होना है। प्रकृति द्वारा शरीर से विकार मुक्ति का सहज प्रयास ही रोग है। अतः तीव्र रोग शत्रु नहीं मित्र है, रोग हमें जगाने के लिए आते हैं कि हम अपनी खराब आदतों को सुधार लें। पर आधुनिक चिकित्सा में दवाइयों द्वारा रोग को दवा दिया जाता है जिससे तुरंत राहत (रिलीफ) मिल जाता है, किन्तु बाद में दवा हुआ रोग घातक जीर्ण एवं चिरकालीन (क्रोनिक) के रूप में सामने आता है। ऐसी स्थिति में राहत शामत बन जाती है और रिलीफ ग्रीफ बन जाता है। औषधियों से स्वास्थ्य मिलता तो दवा निर्माण करने वाले, दवा लिखने वाले तथा दवा बेचने वाले कभी बीमार न पड़ते। स्वास्थ्य पर भी पूंजीपतियों का एकाधिकार होता। पर ऐसा नहीं है।

योग भगाये रोग : प्राकृतिक चिकित्सा का एक प्रमुख भाग योग माना गया है। योग एक प्राचीन विद्या है। आधुनिक समय में योग एक बहुत स्वास्थ्य कारक के रूप में सामने आ रहा है, इसका उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से वृहत पैमाने पर किया जाता है। क्योंकि आज पूरा विश्व आधुनिक दवाओं के पार्श्व प्रभाव से त्रस्त हो चुका है। वह बिना दवा के तन, मन व आत्मिक स्तर पर स्वास्थ्य को पाना चाहता है। और योग समय की कसौटी पर बिल्कुल खरा उतर रहा है।

योग शब्द संस्कृत की 'युज' धातु से बना है। जिसका अर्थ होता है जोड़ना। अतः योग का शाब्दिक अर्थ हुआ जोड़ना, संयोग मिलाना अथवा संधान। योग द्वारा आत्मा परमात्मा का पारस्परिक संधान होता है। योग के गुरु महायोगी महर्षि पातंजलि माने गये हैं।

योग सूत्र में योग को परिभाषित करते हुए, 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' कहा गया है। इसके अर्थ है कि चित्त की वृत्तियों को चंचल होने से रोकना।

प्रथम दृष्टि से यह अर्थ निषेक परक लगता है, परन्तु वास्तव में इसे विधिपरक ही समझना चाहिए।

योग वास्तव में स्वयं प्रकाश आत्मा के स्वरूप को अनुभव कराने की विद्या है। जिसे गीता में 'योगः कर्मसु कौशलम्' कहा गया है। वास्तव में सम्पूर्ण मनुष्य का जीवन ही योग के अन्तर्गत आता है। जो उसे बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर ले जाता है।

योग के आठ अंग माने गये हैं। 1. यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान, 8. समाधि योगासन के अभ्यास से तन तन्दरुस्त, मन प्रसन्न और बुद्धि तीक्ष्ण बनती है जीवन के हर क्षेत्र में सुखद स्वप्न साकार करने की कुंजी हमारे अंतरमन में झुपी पड़ी है। हम अपने जीवन में तमाम सुषुप्त शक्तियों को जगाकर जीवन का विकास कर सकते हैं। तथा योगासनों का अभ्यास कर जीवन विकास का क्रम और आगे बढ़ा सकते हैं।

हजारों वर्ष की कसौटियों में कसे हुए, देश-विदेश में आदरणीय लोगों द्वारा आदर पाये हुए आसनों को आगे बताया जा रहा है।

1. पद्मासन : इस आसन में पैरों का आधार पद्म अर्थात् कमल जैसा बनने से इसको पद्मासन या कमलासन कहा जाता है।

लाभ : उत्साह में वृद्धि होती है, स्वभाव में प्रसन्नता आती है। बुद्धि का अलौकिक विकास होता है। चित्त में निर्मलता आती है। मानसिक कार्य करने वाले, विद्यार्थी वर्ग में तथा चिन्तन मनन करने वालों के लिए यह आसन अद्वितीय है।

2. पवन मुक्तासन : शरीर में स्थित पवन (वायु) यह आसन करने से मुक्त होती है। इससे इसे पवन मुक्तासन कहते हैं।

लाभ : पेट की चर्बी कम होती है। कब्ज दूर होता है। पेट की वायु दूर होकर पेट विकार रहित होता है। स्मरण शक्ति बढ़ती है। अतः डॉ., वकील, साहित्यकार, व्यापारी तथा विद्यार्थी वर्ग के लिए यह आसन विशेष उपयोगी है।

3. भुजंगासन : इस आसन में शरीर की आकृति फन उठाये हुए सर्प की तरह होती है। इसलिए इसे भुजंगासन कहते हैं।

लाभ : कमर पीठ दर्द में लाभदायक है। स्त्री रोगों में विशेष लाभ दायक है। थकान दूर करने में सहायक है। जठराग्नि

को प्रदीप्त करता है। तथा कब्ज को दूर करता है। मस्तिष्क से निकलने वाले ज्ञान तंतु बलवान बनते हैं।

4. वज्रासन : वज्रासन का अर्थ है बलवान स्थिति पाचन शक्ति, वीर्य शक्ति तथा स्नायु शक्ति देने वाला होने से यह आसन वज्रासन कहलाता है।

लाभ : भोजन के बाद इस आसन में बैठने से पाचन शक्ति तेज होती है। नेत्र ज्योति बढ़ती है। वीर्य की ऊर्ध्वगति होने से शरीर वज्र जैसा मजबूत होता है। घुटना, रीढ़, कमर, जाँघ और पैरों की शक्ति बढ़ती है।

5. शशांक आसन : शशांक चन्द्रमा कहलाता है। इसके अभ्यास से चंद्रमा की तरह शांति एवं शीतलता आती है अतः इसे शशांक कहते हैं।

लाभ : शारीरिक व मानसिक शांति स्वास्थ्य तथा चुस्ती-फुर्ती के लिए बहुत उपयोगी है।

6. पश्चिमोत्तानासन : यह आसन थोड़ा कठिन होने से इसे अग्रासन कहा जाता है। यह सर्वश्रेष्ठ आसन है।

लाभ : रीढ़ को लचीला बनाता है। पेट की चर्बी घटाता है। शारीरिक व मानसिक विकारों को शांत करता है। बौनापन, डायबिटीज, लीवर, किडनी व श्वास रोगों में लाभदायक है।

7. ताड़ासन : ताड़ का अर्थ है पहाड़ इस आसन में व्यक्ति पहाड़ की तरह स्थिर और सीधा खड़ा रहता है।

लाभ : सुबह 3-4 गिलास ठंडा पानी पीकर (शौच से पहले) ताड़ासन करने से कब्ज दूर होता है। कमर कूल्हा और सीना सुडौल बनता है।

इस तरह हमने देखा कि प्राकृतिक चिकित्सा पाचन तंत्र (डायजेस्ट सिस्टम) से संबंधित है और योग तंत्रिका तंत्र (नर्वस तंत्रिका) से संबंधित है। अतः योगाभ्यास व प्राकृतिक चिकित्सा का सम्मिलित प्रयोग अधिक प्रभावी होता है। किसी भी रोग को ठीक करने के लिए आहार पर ध्यान देना जरूरी है। अतः पूर्ण लाभ को पाने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा योग और संतुलित आहार तीनों आवश्यक हैं।

अच्छा स्वास्थ्य और सौंदर्य मिलता है, प्राकृतिक योगमय जीवन जीने से। प्राकृतिक जीवन पद्धति जो सरल, निरापद एवं उपयोगी है उसके नियमों का पालन, अपनी आदतों में शामिल कर लिया जाये तो एक सुन्दर स्वास्थ्य एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन सहजता से जिया जा सकता है।

कार्ड पैलेस, वर्णी कालोनी, सागर

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा : दान के 7 धर्मक्षेत्र कौन से हैं ?

समाधान : 'धर्मोपदेशपीयूष वर्ष-श्रावकाचार' में धर्म के 7 क्षेत्र इस प्रकार कहे हैं :

जिणभवन-बिंब-पोत्थय-संघसरूवाइं सत्तखेत्तेसु ।

जं बइयं धणबीयं तमहं अणुमोयए सकयं ॥ ३० ॥

जिनबिम्बं जिनागारं जिनयात्रा प्रतिष्ठितम् ।

दानं पूजा च सिद्धांत-लेखनं समक्षेत्रकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ : वे सात क्षेत्र इसप्रकार कहे गये हैं : जिनभवन, जिनबिम्ब, जिनशास्त्र और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विधसंघ इन सात क्षेत्रों में जो धनरूपी बीज बोया जाता है, वह अपना है, ऐसी मैं अनुमोदना करता हूँ।

और भी कहा है : जिनबिम्ब, जिनालय, जिनयात्रा, जिनप्रतिष्ठा, दान, पूजा और सिद्धांत (शास्त्र) लेखन ये सात धर्म क्षेत्र हैं।

प्रश्नकर्ता : सत्येन्द्र कुमार जैन, रेवाड़ी

जिज्ञासा : भगवान् जम्बूस्वामी का निर्वाण स्थल मथुरा माना जाता है। क्या इनके विपुलाचल से निर्वाण के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं ?

समाधान : जम्बूस्वामी चरित्र सर्ग 12 में इस प्रकार लिखा है :

तपोमासे सिते पक्षे सप्तम्यां च शुभे दिने ।

निर्वाणं प्राप सौधर्मो विपुलाचलमस्तकात् ॥ ११० ॥

तत्रैवाहनि यामार्धं व्यवधानवतिः प्रभोः ।

उत्पन्नं केवलज्ञानं जम्बूस्वामिमुनैस्तदा ॥ ११२ ॥

विजहर्ष ततोभूमौ श्रितौ गंधकुटीं जिनः ।

मगधादि-महादेश-मथुरादि-पुरीस्तथा ॥ ११९ ॥

कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञान लोचनः ।

वर्षाष्टदशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनाधिपः ॥ १२० ॥

ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात् ।

कर्माष्टकविनिर्मुक्तः शाश्वतानंदसौख्यभाक् ॥ १२१ ॥

अर्थ : माघ शुक्ल सप्तमी के शुभ दिन विपुलाचल पर्वत

के शिखर से सुधर्म केवली ने मोक्ष प्राप्त किया। उसी दिन जम्बूस्वामी मुनिराज को, जब दिन का आधा पहर बाकी था, केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

गंध कुटी में विराजमान होकर उन जम्बूस्वामी भगवान ने मगध आदि बड़े-बड़े देशों में तथा मथुरा आदि नगरों में विहार किया। इसमें केवली भगवान ने 18 वर्ष पर्यंत धर्मोपदेश देते हुए लोगों को आनंद प्रदान किया। इसके अनंतर उन केवली भगवान् का विपुलाचल पर्वत से मोक्ष हो गया। अष्ट कर्मों को नष्ट कर मुक्त हुए एवं अविनाशी अनंत सुख के स्वामी हुए।

2. कवि वीरकृत 'जम्बूसामि चरित' में इस प्रकार लिखा है :

विउलइरि सिहरि कम्मट्ट चक्षु ।

सिद्दालय सासय सौख्यपत्तु ॥ सन्धि 10, कडवक 24 ॥

अर्थ : विपुलगिरि के शिखर पर अष्टकर्मों को नष्टकर सिद्दालय पधारे और शाश्वत मोक्ष सुख के पात्र हुए।

उपरोक्त दोनों प्रमाणों से भगवान् जम्बूस्वामी का निर्वाणस्थल राजगृही की विपुलाचल पहाड़ी सिद्ध होती है।

यह भी जानना उचित होगा कि भट्टारक ज्ञानसागर जी ने सर्वतीर्थ वंदना में तथा पं. दिलसुख ने अकृत्रिम चैत्यालय जैन आला में भगवान् जम्बूस्वामी की निर्वाण स्थली मथुरा को माना है।

प्रश्नकर्ता : कामता प्रसाद जैन, मुजफ्फरनगर

जिज्ञासा : मोक्षमार्ग प्रकाशक 8वें अधिकार में कहा है कि, 'समवसरण सभा विषे मुनिनि की संख्या कही, वहाँ सर्व ही शुद्ध भावलिंगी मुनि नथे। परन्तु मुनिलिंग धारण तैं सबन को मुनि कहे', तो क्या समवसरण में जो मुनियों की संख्या कही है उनमें द्रव्यलिंगी भी होते हैं।

समाधान : तिलोयपण्णत्तिअधिकार 4 में गाथा 1103 से 1176 तक चौबीसों तीर्थकरों के समवसरण में ऋषियों की संख्या का वर्णन है। यह संख्या मुनियों की नहीं है, ऋषियों की कही गई है। ऋषि शब्द की परिभाषा करते हुए प्रवचनसार में कहा है कि ऋद्धि प्राप्त साधु को ऋषि कहते हैं। मूलाचार में भी

उत्तम चरित्र वाले मुनियों को ऋषि कहा है। प्रवचनसार (तात्पर्यवृत्ति) गाथा 249 में ऋषियों के चार भेद कहे हैं:

1. राजर्षि : विक्रिया और अक्षीणऋद्धि प्राप्त साधु।
2. ब्रह्मर्षि : बुद्धि एवं औषधिऋद्धि प्राप्त साधु।
3. देवर्षि : आकाशगामी ऋद्धि सम्पन्न साधु।
4. परमर्षि : केवलज्ञानी अरिहन्त भगवान्।

उक्त सभी परिभाषाओं एवं भेदों से यह स्पष्ट होता है कि ऋषिगण, सम्यदृष्टि, ऋद्धि से सम्पन्न तथा परम उत्कृष्ट चारित्र के धारी होते हैं। अतः ये सभी भावलिंगी ही मानने चाहिए द्रव्यलिंगी नहीं।

अब दूसरी दृष्टि से विचार करते हैं : जैसे तिलोयपण्णत्ति की उपरोक्त गाथाओं में भगवान् पद्मप्रभु के समवसरण में ऋषियों की संख्या 3,30,000 कही है। (गाथा 1104) जिसका विवरण गाथा 1125 से 1127 में इस प्रकार कहा है : पूर्वधर 2300, शिक्षक 2,69,000, अवधिज्ञानी 10,000, केवली 12,000, विक्रिया ऋद्धि के धारक 16,800, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी 10,300 और वादित्व ऋद्धि के धारी 9,600=3,30,000।

उपरोक्त संख्या में सभी ऋद्धिधारी मुनिराज हैं। इन 3,30,000 मुनिराजों में से 3,14,000 मुनि (तिलोयपण्णत्ति गाथा 1231) उसी भव से मोक्ष पधारे हैं। 12000 मुनि अनुत्तरों में उत्पन्न हुए हैं, शेष बचे केवल 4,000 मुनि वैमानिक देवों में उत्पन्न हुए हैं। अतः तिलोयपण्णत्ति में दी गई ऋषियों की संख्या को भावलिंगी ही मानना चाहिए। यद्यपि यह संभव है कि समवसरण में अन्य द्रव्यलिंगी मुनि भी प्रवेश पाने एवं दिव्यध्वनि सुनने के अधिकारी हैं परन्तु उनकी गणना ऋषियों में नहीं माननी चाहिए।

यह भी विचारणीय है कि भगवान् आदिनाथ के समवसरण में श्रावकों की संख्या और श्राविकाओं की संख्या तीन लाख और पाँच लाख=कुल आठ लाख लिखी है। भगवान् आदिनाथ का विहारकाल 1000 वर्ष कम एक लाख पूर्व अर्थात् 84 लाख x 84 लाख x 1 लाख- एक हजार वर्ष अर्थात् कई शंख वर्ष कहा गया है। यदि समवसरण में आने वाले सामान्य जैन धर्मियों की संख्या मात्र आठ लाख मानते हुए, इन श्रावकों को व्रत रहित एवं सामान्य जीवों की संख्या माना जाए तो उचित प्रतीत नहीं होता। अतः श्रावक-श्राविकाओं की संख्या को भी सम्यक्त्व और व्रत सहित मनुष्यों की संख्या मानना उचित है।

विद्वानों से निवेदन है कि कृपया इस संबंध में अपने विचार लिखने का कष्ट करें।

जिज्ञासा : वैमानिक देवों की देवियां क्या अपने-अपने स्वर्ग में उत्पन्न नहीं होती? तो फिर कहाँ उत्पन्न होती हैं।

समाधान : उपरोक्त विषय पर श्री त्रिलोकसार में इस प्रकार कहा है :

दक्खिण उत्तरदेवी सोहम्मीसाण एव जायंते ।

तहिं सुद्धदेविसहिया छच्चउलक्खं विमाणाणं ॥५२४॥

तद्देवीओ पच्छा उवरिमदेवा णयंति सगठाणं ।

सेसविमाणा छच्चदुबीसलक्ख देवदेविम्मिस्सा ॥५२५॥

अर्थ : दक्षिण उत्तर कल्पों की देवांगनाएं क्रम से सौधर्मेशान में ही उत्पन्न होती हैं। वहाँ शुद्ध (मात्र) देवांगनाओं की उत्पत्ति से युक्त छह लाख और चार लाख विमान हैं। उन देवियों की उत्पत्ति के पश्चात् उपरिम कल्पों के देव अपने-अपने स्थान पर ले जाते हैं। सौधर्मेशान कल्पों में शेष छब्बीस लाख और चौबीस लाख विमान देव-देवियों की उत्पत्ति से संमिश्र हैं ॥ ५२४, ५२५ ॥

भावार्थ : पहले, तीसरे, पाँचवे, सातवें, नौवें, ग्यारहवें, तेरहवें और पन्द्रहवें स्वर्ग के देवों की देवियाँ सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न होती हैं और शेष स्वर्ग की देवियाँ ईशान स्वर्ग में उत्पन्न होती हैं। ये वैमानिक देव अवधिज्ञान से अपने-अपने देवियों के चिह्न जानकर उनको अपने-अपने स्थानों पर ले जाते हैं। तिलोयपण्णत्ति अधिकार 8, गाथा 333 से 337 तक ठीक इसी प्रकार कथन है। सिद्धान्तसार दीपक में भी 15वें अधिकार की 190 से 194 गाथा तक इसी प्रकार का कथन पाया जाता है। यह भी जानने योग्य है कि यदि कोई देवी पहले स्वर्ग से 15वें स्वर्ग में ले जाई जाए तो भी उसकी लेश्या पीत ही रहती है, शुक्ल नहीं हो जाती है। तथा अन्य स्वर्गों में जाने वाली सभी देवियाँ मूल शरीर से ही जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : रविन्द्र कुमार जैन, सागर।

जिज्ञासा : पदमपुराण पर्व 109, श्लोक 28 में रामायण और महाभारत का अन्तर कुछ अधिक 64000 वर्ष लिखा है, इसे घटित करके बताइये?

समाधान : रामायण अर्थात् रामचंद्र जी के काल में और महाभारत अर्थात् श्रीकृष्ण के काल में श्री त्रिलोकसार के अनुसार अन्तर इस प्रकार घटित होता है।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के मोक्ष जाने के 6 लाख वर्ष बाद नमीनाथ भगवान मोक्ष गए। भगवान नमीनाथ के मोक्ष जाने के पाँच लाख वर्ष बाद में भगवान नेमीनाथ मोक्ष गये। भगवान नेमीनाथ के मोक्ष जाने के 83750 वर्ष बाद भगवान पार्श्वनाथ मोक्ष गए। भगवान नेमीनाथ की आयु 1000 वर्ष थी। अब यदि भगवान मुनिसुव्रत नाथ के तीर्थ के मध्य में रामचंद्र जी की उत्पत्ति मानी जाए। तीन लाख वर्ष तो भगवान मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ के और पाँच लाख वर्ष भगवान नमीनाथ के तीर्थ के जोड़ने पर रामायण और महाभारत का अंतर लगभग आठ लाख वर्ष आता है। पद्मपुराण में जो 64000 वर्ष लिखा गया है वह तो किसी भी प्रकार घटित नहीं होता। तीर्थकरों के अंतरकाल के संबंध में सभी आचार्य एकमत हैं।

अतः आगमानुसार तो रामायण और महाभारत में उपरोक्त अन्तर ही सही बैठता, विद्वतगण इस पर विचार करें।

जिज्ञासा : आजकल मुनिराजों को आहार में दिए जाने वाले फल केवल गर्म पानी से धोकर अचित्त मान लिए जाते हैं। अथवा सेव, केला आदि के पाँच-सात टुकड़े करके अचित्त मानकर दिए जाते हैं, क्या यह उचित है?

समाधान : उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में पूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा लिखित सचित्त विचार नामक पुस्तक अच्छी तरह पढ़ने योग्य है। वनस्पति के दो भेद हैं, प्रत्येक और साधारण। प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद हैं, सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक। इन तीनों प्रकार की वनस्पति में सप्रतिष्ठित प्रत्येक एवं साधारण वनस्पति में अनंत जीव राशि पाई जाती है, अतः अभक्ष्य हैं। केवल अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति ही भक्ष्य है, जिसमें पके हुए फल आदि आते हैं। एक पके हुए फल सेव, केला, खीरा आदि में असंख्यात प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव पाये जाते हैं। मुनिराज स्थावर जीवों की भी हिंसा के त्यागी होते हैं। अतः जिस तरह उनको पानी छानकर फिर उवालकर, शुद्धि आदि के लिए अचित्त (जीव रहित) करके दिया जाता है। उसी प्रकार वे केला, सेव, खीरा आदि सचित्त फलाहार भी नहीं लेते हैं। अतः श्रावक आहार देते समय मुनिराज को अचित्त फल ही आहार में देता है। सचित्त फल को अचित्त बनाने के संबंध में रत्नकरण्डश्रावकाचार में इस प्रकार कहा है:

**मूलफलाशाकशाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽन्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्ति ॥ १४१ ॥**

अर्थ : जो श्रावक मूल-फल-पत्र-डाहली-करीर कहिये

वंशकिरण (करैया) अर कंद अर फूल अर बीज ये अग्नि करि पके हुए नाहिं होय काचे होय तिनकूं निरगल हुआ भक्षण नाहीं करें, सो श्रावक दया की मूर्ति सचित्तविरत नाम पंचम पद कूं अंगीकार करै। (टीका पं. सदासुखदास जी)

भावार्थ : जो सचित्त त्याग नामक पंचम प्रतिमाधारी है वह कोई भी हरी वनस्पति, फल, शाक आदि को, बिना अग्नि में पकाए भक्षण नहीं करता है।

सचित्त वस्तु के भक्षण का निषेध करते हुए श्रीमूलाचार गाथा 827 में इस प्रकार कहा है:

**फलकंदमूलबीयं अणगिपक्कं तु आमयं किंचि ।
गच्छा अणोसणीयं य वि य पडिच्छंति ते धीरा ॥ ८२७ ॥**

अर्थ : अग्नि से नहीं पके हुए फल, कंद, मूल और बीज तथा और भी कच्चे पदार्थ जो खाने योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर वे धीर मुनि उनको स्वीकार नहीं करते हैं।

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि बिना अग्नि में पके हुए फल या शाक सचित्त हैं, अतः पांचवीं प्रतिमा और उससे आगे की प्रतिमाधारक श्रावकों को तथा मुनियों को भक्ष्य न होने से आहार में देने योग्य नहीं हैं। अतः श्रेष्ठतम तो यही है कि सेव, केला, ककड़ी, अंगूर आदि की सब्जी पकाकर उनको दी जाए। अथवा उबलते हुए पानी में इन फलों को 15 मिनट तक रखकर, ताकि वे अंदर तक गर्मी के कारण अचित्त हो जाएं, आहार में देना चाहिए। फलों को केवल गर्म पानी से धोकर या उनके कुछ टुकड़े करके आहार में पात्र को देना शास्त्र विरुद्ध है।

इस संबंध में कुछ महानुभाव सचित्त वस्तु को प्रासुक करने के लिए स्वामिकार्तिकैयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका में कही गई निम्न गाथा बताते हैं :

**सुककं पक्कं तत्तं अंवल लवणेण मिस्सियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥**

अर्थ : जो द्रव्य सूखा हो, पका हो, तप्त हो, आम्लरस तथा लवणमिश्रित हो, कोल्हू, चरखी, चक्री, छुरी, चाकू आदि यंत्रों से भिन्न-भिन्न किया हुआ तथा संशोधित हो, सो सब प्रासुक है।

भावार्थ : उपरोक्त गाथा का अर्थ इसप्रकार समझना चाहिए।

1. जो सब्जी सूख चुकी है वह तो काष्ठ रूप हो जाने से अचित्त

ही है। जो अग्नि में पका ली गई है वह अचित्त ही है। जो तप्त अर्थात् गर्म कर ली गई है वह भी अचित्त ही है।

2. आम्ल रस तथा लवण मिश्रित का अर्थ यह है कि जिस प्रकार दूध में शक्कर डाली जाती है उसीतरह यदि वह फल अन्दर में भी सर्वांश रूप से अम्ल या लवण से मिश्रित हो गया हो तब वह अचित्त होता है। जो ककड़ी, सेव आदि में संभव नहीं होता। जैसे कच्चे नारियल का पानी सचित्त होता है उसमें नमक-मिर्च का चूर्ण डालकर घोल दिया जाये तो वह अचित्त हो जाता है। इसीलिए समझदार दाता नारियल के पानी में नमक, मिर्च का चूर्ण डालकर ही आहार में देते हैं।

3. यंत्र से छिन्न-भिन्न करने का तात्पर्य है कि उस वस्तु को मिक्सी में डालकर ऐसा छिन्न-भिन्न कर लिया जाए कि वह कपड़े में से छन सके। जैसे आम का आमरस बनाया जाता है। या अनार-संतरे-मौसमी आदि का जूस निकाला जाता है। तब तो उसे अचित्त कहा जा सकता है। केवल चाकू से सेव के चार-छः टुकड़े करने पर वे अचित्त नहीं कहे जा सकते। क्योंकि अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की भी गहन्य अवगाहना बहुत छोटी हुआ करती है। किसी-किसी त्रस जीव की भी अवगाहना इतनी छोटी देखी जाती है कि कपड़े के छेद में से भी पार हो जाया करती है तो फिर वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवों की अवगाहना का तो कहना ही क्या।

कुछ महानुभाव पेड़ से टूटे हुए फल या पत्ते को अचित्त अर्थात् जीव रहित बताते हैं। उनका ऐसा कहना आगम सम्मत नहीं है। क्योंकि :

1. आदिपुराण पर्व 8, श्लोक नं. 198 से 202 के अनुसार राजा प्रीतिवर्धन ने नगर की गलियों में फूल बिखरवा दिए थे ताकि नगर में जाने वाले मुनि भूमि के अप्रासुक होने के कारण राजा के यहाँ आहार के लिए आ जावें। यहाँ आचार्य जिनसेन ने टूटे हुए फूलों को अप्रासुक अर्थात् सचित्त माना है।
2. आदिपुराण पर्व 38, श्लोक नं. 17-19 में, जब महाराजा भरत ने सत्कार योग्य व्यक्तियों की परीक्षा की इच्छा से घर के आंगन में पत्ते-फूल आदि बिछाकर उन व्यक्तियों को बुलाया था, तब पूछने पर, उस मार्ग से न आने वालों ने कहा, 'आज पर्व के दिन कोपल, पत्ते तथा पुष्प आदि का

विघात नहीं किया जाता। अन्यथा उन कोपल आदि में उत्पन्न जीवों का विनाश होता। हरे अंकुर आदि में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, ऐसे सर्वज्ञदेव के वचन हम लोगों ने सुने हैं, इसलिए, जिसमें गीले फल, पुष्प और अंकुर आदि से शोभा की गई है, ऐसा आपके घर का आंगन आज हम लोगों ने नहीं खूँदा है।' इस प्रकरण से भी स्पष्ट है कि टूटे हुए फल-पत्ते आदि सचित्त हैं।

3. चारित्रचक्रवर्ती ग्रंथ के एक प्रसंग के अनुसार, एक बार एक बड़े शास्त्री जी आचार्य श्री के पास आए और उनके चरणों पर पुष्प रख दिया। महाराज जी ने पूछा, "यह क्या किया"? पं. जी ने फिर कहा, 'महाराज चरणों में पुष्प रखने से क्या बाधा हो गई?' महाराज ने कहा, 'शरीर की उष्मता से उसके जीव मरण को प्राप्त हो जाएंगे और हमें जीवहिंसा का दोष लगेगा। अतः ऐसा नहीं करना चाहिए।' इस प्रसंग से स्पष्ट है कि चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराज भी वृक्ष से टूटे हुए फूल-पत्ती आदि को सचित्त मानते थे।

उपरोक्त तीनों आगम संदर्भों से स्पष्ट है कि वृक्ष से टूटे हुए फल-फूल पत्ती आदि सचित्त ही होते हैं। उनमें असंख्यात अथवा अनंत जीव राशि पाई ही जाती है। इसीलिए तो अष्टमी, चतुर्दशी आदि के पर्व के दिनों में हरी वस्तु न खाने का विधान अभी तक समाज में चला आ रहा है। बुंदेलखण्ड आदि स्थानों में दशलक्षण पर्व आदि के दिनों में बहुत संख्या में जैनी भाई हरी वस्तु नहीं खाते हैं।

यदि आहार में मौसमी का रस दिया जाये तो उसमें मौसमी का एक भी जीरे जैसा भाग भी यदि रह जाता है तो वह सचित्त है।

कोई महानुभाव यह भी प्रश्न करते हैं कि सेव आदि को उबले हुए पानी में डालकर देने से वह वस्तु अस्वाद हो जाती है अतः ऐसा करना ठीक नहीं। उनका ऐसा कहना उचित नहीं है। अग्नि के द्वारा उबलने पर पानी की सुस्वादुता भी स्वल्प रह जाती है तो क्या साधु पानी भी बिना उबला हुआ लेने लगे? वास्तविकता यह है कि सचित्त फल पौष्टिक, स्वादिष्ट और जीवसहित होते हैं। सचित्त त्यागी श्रावकों और मुनियों को ये तीनों ही बातें अप्रिय हैं। उनकी दृष्टि तो इंद्रियों के दमन पर, कषाओं के शमन पर तथा जीवदया पर रहती है। अतः वे अचित्त जल, फल, शाक आदि को ही ग्रहण करते हैं।

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा।

साधु बनूँ कि शादी करूँ ?

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन

एक बार एक व्यक्ति ने अपने मित्र से पूछा- 'मित्र मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मैं क्या करूँ, साधु बनूँ कि शादी करूँ?'

वह मित्र कुछ सोचने लगा। मामला भावी जीवन का था अतः जल्दी उत्तर नहीं देना चाहता था। कभी साधु जीवन अच्छा लगता, कभी वैवाहिक जीवन की रंगीनियों में वह खो जाता। अचानक उसे जैसे कुछ याद आया हो, वह बोला - "मित्र, मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कुछ सोचकर दूंगा। चलो, अभी मन्दिर चलते हैं। सुना है वहाँ कोई बड़े संत आये हैं।"

दूसरे मित्र ने कहा- 'ठीक है। चलो, चलते हैं।'

वे दोनों मित्र जब मंदिर पहुँचे तो देखते हैं कि संत लकड़ी के आसन पर विराजमान हैं। चेहरे पर सौम्यता, होठों पर मुस्कान और मस्तक की विशालता उनके महापुरुषत्व एवं तेजस्विता को प्रकट कर रही है। काया की कृशता को मानो उनकी तेजस्विता ने छिपा लिया है उम्र में न वार्धक्य है न युवकोचित जोश। आप चाहें तो उन्हें युवा भी मान सकते हैं किन्तु वृद्ध मानने को दिल नहीं करता। दोनों मित्रों ने प्रणाम किया, जिसके उत्तर में उन संतश्री ने 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' कहकर आशीर्वाद स्वरूप हाथ उठा दिया।

जिन्हें देखकर उम्र जानने की उत्कण्ठा हो रही थी, ऐसे संत से मित्र ने पूछ ही लिया - 'गुरुदेव, इस समय आपकी उम्र कितनी है?'

प्रश्न जिस विनम्रता और जिज्ञासा से पूछा गया था उससे भी अधिक विनम्रता से संत ने कहा - 'वत्स, 80 वर्ष।'

मित्र कुछ आश्चर्य हुआ और अपनी अन्य जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए संत के और निकट आकर बैठ गया और पूछा - 'गुरुदेव संसार कैसा है?'

गुरुदेव ने उत्तर दिया - "संसार असार है, इसमें रंचमात्र भी सुख नहीं है- या विधि संसार असारा या मैं सुख नहीं लगाया। किन्तु जो धर्म की शरण में चला जाता है उसके लिए संसार भी सारभूत और सुख का कारण बन जाता है।"

मित्र ने परम सन्तोष भाव से हाँ की मुद्रा में सिर हिला दिया। थोड़ी देर में जैसे कुछ याद कर रहा हो और याद नहीं आ रहा हो, इस भाव से उन सन्त से पूछा - 'गुरुदेव आपने अपनी उम्र कितनी बतायी थी? आपने उम्र बतायी तो थी किन्तु मैं ही ठीक से सुन नहीं पाया। कृपया कर पुनः बता दीजिए?'

संत ने बिना विचलित हुए कहा - 'वत्स, 80 वर्ष।' 80 वर्ष की उम्र है मेरी।

मित्र ने फिर हाँ की मुद्रा में सिर हिलाया और बोला - 'गुरुदेव, धर्म किसे कहते हैं? आपने कहा था-धर्म की शरण में)'

संत ने उत्तर दिया - जो वस्तु का स्वभाव है वही धर्म है - धम्मो वत्थु सहावो।

मित्र ने कहा, सो तो ठीक है। पुनः अपने दिमाग पर जोर देकर (जैसे कुछ याद कर रहा हो) उन संत से पूछ बैठा - 'गुरुदेव। आपने अपनी उम्र बतायी थी वह कितनी थी? क्या करूँ मुझे पता नहीं क्या हो जाता है? इधर सुनता हूँ, उधर भूल जाता हूँ। अबकी बार बता दीजिए फिर नहीं भूलूँगा।'

गुरुदेव ने सहज भाव से कहा - 'वत्स, 80 वर्ष।'

मित्र यह सुनकर कुछ सोचने लगा फिर लगा कि वह कुछ ऐसा प्रयास कर रहा है कि जो सुना है उसे कभी न भूले। फिर बोल उठा- 'गुरुदेव, आपने अपनी उम्र 90 वर्ष ही बतायी थी ना?'

'नहीं वत्स, मैंने तो अपनी उम्र 80 वर्ष बतायी थी।' गुरुदेव के चेहरे को वह मित्र पढ़ रहा था। उसे लगा कि गुरुदेव के चेहरे पर अब भी सौम्य संतत्व साफ झलक रहा है, मानो वे पहली बार बता रहे हों कि उनकी उम्र 80 वर्ष है।

अब दोनों मित्रों ने प्रणाम किया और चलने लगे। दरवाजे पर पहुँचे ही थे कि उस मित्र ने पलटकर उन संत से फिर पूछा - 'गुरुदेव सही-सही बता दो कि आपकी उम्र कितनी है?'

संत ने पुनः सहजभाव से कहा - 'वत्स, 80 वर्ष।'

मित्र आश्चर्य हो चुका था कि संत की यह सहजता बनावटी नहीं है बल्कि सहज ही है वह संत के चरणों में झुक गया और बोल उठा कि, 'संत न होते जगत में तो जल जाता संसार।'

अब वह अपने साथी मित्र की ओर मुखातिव हुआ बोला - 'मित्र मुझे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया। यदि तुम्हारे परिणामों में इन संत के जैसी समता हो तो साधु बन जाओ, वरना शादी कर लो।'

तो बच्चे हमें इस कहानी से यही सीख मिलती है कि यदि परिणामों / विचारों में समता / धैर्य रखोगे तो एक दिन तुम भी संत बनकर जगत के द्वारा पूजे जाओगे। साधु जीवन के विषय में हम पढ़ते भी हैं, 'समता सम्हारे थुति उचारें, बैर जो न तहां धरें।'

ऐसे संतों को हमारा शत-शत नमन।

एल -65, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

समाचार

जबलपुर को मुनिश्रेष्ठ प्रमाणसागर जी का सत्संग मिला

परम पूज्य मुनिरत्न प्रमाणसागर जी महाराज जब महानगर जबलपुर में दिनांक 28 मार्च 2004 को प्रवेश कर रहे थे तब संयोग से उनके गुरुभाई परमपूज्य मुनिरत्न पावनसागर जी महाराज एवं गुरु बहिनें पूज्य आर्यिका गुणमति जी, पूज्य कुशलमति जी पूज्य धारणामति जी एवं पूज्य उन्नतमति माताजी श्रावकों के विशाल समूह के साथ उनकी अगवानी करने गाजे-बाजे और पताकाओं के साथ निकल पड़े। चरहाई के चौड़े क्षेत्र (मैदान) पर दो महान संत आमने सामने पहुंच गये। एक दूसरे को नमोस्तु प्रतिनमोस्तु कर आपस में गले मिले। हजारों श्रावकगण आचार्य शिरोमणी परमपूज्य विद्यासागर जी महाराज के दो मनीषी शिष्यों का गंगा-जमुनी मिलन देखकर रोमांचित हो उठे। सभी के कंठों से निकले जयघोषों से आकाश-क्षेत्र भर गया। संतों और श्रावकों का आत्मीय उत्साह काफी समय तक तरंगित होता रहा। फिर संत समूह लार्डगंज जैन मंदिर की ओर चल पड़ा एक विशाल शोभायात्रा के साथ।

मुनियों को नगर के लार्डगंज स्थित प्रसिद्ध मंदिर में निर्मित साफ-शुद्ध कक्षों में ठहराया। माताओं को पुत्रीशाला के समीप। दूसरे दिन से ही मुनियों ने जिनवाणी की धारा को गतिमान करते हुये दिन में तीन बार कार्यक्रमों की श्रृंखला खड़ी कर दी। सुबह 7 से 8' जैन सिद्धांत शिक्षण' की कक्षाएं, 8.30 से 9.30 तक 'प्रवचन,' दोपहर 3 से 4 गोम्पटसार एवं 4 से 5 तक समयसार की कक्षाएँ शुरू की गईं। हर कार्यक्रम में संस्कारधानी के नाम से प्रसिद्ध जबलपुर के जागरूक श्रावक विशाल संख्या में उपस्थित होते थे।

इसी बीच महावीर जयंती का पंच दिवसीय विशाल कार्यक्रम एक से पांच अप्रैल तक संतों के सानिध्य में सम्पन्न कराया गया।

महावीर जयंती के कार्यक्रमों की सघन श्रृंखला से मुनिद्वय एक दिन का भी विराम न पा सके तभी जैन नवयुवक सभा एवं जैन पंचायत सभा के संयुक्त अनुरोध पर दिव्य सत्संग एवं प्रवचन माला का ग्यारह दिवसीय विशाल समारोह दिनांक 9 मई रविवार से 19 मई बुधवार तक डी.एन. जैन कालेज के विशाल मैदान में सम्पन्न करने की आज्ञा ली गई। परम पूज्य मुनि प्रमाणसागर जी ने कार्यक्रम के लिये आशीर्वाद दिया।

दिव्य सत्संग - 9 मई को प्रातःकाल धर्म प्रभावना समिति के संयोजन में विशाल जुलूस के साथ समाज ने शोभायात्रा निकाली एवं मुनिद्वय की पथानुगामी बन उन्हें लार्डगंज मंदिर से

गोलबाजार स्थित मंदिर पहुंचाया गया। मुनिद्वय ने भावसहित दर्शन किये एवं बाद में सीधे समीप ही निर्मित प्रवचन माला के विशाल मंच पर उपस्थित हो गये, सामाजिक कार्यकर्ता एवं अन्य अनेक श्रावकगण छाया की तरह उनके समीप उपस्थित रहे।

घोषित समय के अनुसार प्रथम दिवस पूज्य मुनिवर प्रमाणसागर जी ने 'जीवन की सार्थकता' विषय पर महत्वपूर्ण एवं मौलिक प्रवचन दिये उनसे पूर्व परमपूज्य मुनि पावनसागर जी ने भी अपने अनमोल उद्गार रखे। इसतरह प्रतिदिन पृथक-पृथक शीर्षकों के अनुसार प्रवचन चले।

ग्यारहवें दिन 19 मई को आचार्यप्रवर (समाधिस्थ संत) 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज का 32 वां समाधि-दिवस मनाया गया जिसमें मुनिद्वय के साथ साथ पूज्य आर्यिका गुणमति जी एवं पूज्य आर्यिका उन्नतमति माताजी भी शामिल हुईं। पूज्य गुणमति जी ने भी संक्षिप्त प्रवचन दिया।

ग्यारह दिन कैसे कट गये शहर के जैनाजैन समाजों को आभास ही नहीं हुआ। पहले दिन पंडाल में 5 हजार श्रोता उपस्थित हुये थे, कार्यक्रम से जब वे अपने घरों को लौटे और मुनि प्रमाणसागर जी के प्रवचनों की प्रभावना का वर्णन घरों में किया तो दूसरे दिन से पंडाल छोटा पड़ने लगा। क्योंकि श्रोताओं की संख्या दोगुनी हो गई थी। व्यवस्था समिति ने तीसरे दिन पंडाल को अधिकतम सीमातक बढ़ाया और उत्तम व्यवस्था बनाई, फिर भी व्यवस्थायें भीड़ के समक्ष छोटी पड़ गईं क्योंकि प्रतिदिन पंद्रह से बीस हजार तक श्रोतागण उपस्थिति दे रहे थे नगर में जैन समाज के प्रभावनायुक्त भीड़ प्रधान कार्यक्रमों का नया इतिहास बना एवं प्रबुद्ध जगत में मुनि प्रमाणसागर जी की भारी श्रद्धा के साथ चर्चा चलती रही। पत्रकारों, राजनेताओं और प्रशासकीय अधिकारियों का आना निरंतर रहा। लोग कहते हैं कि जिस तरह हिन्दु समाज में संत आशाराम बापू के कार्यक्रमों में विशाल जनसमूह देखने मिलता रहा है वैसा जैन समाज के कार्यक्रम में भी देखने मिला। कृपा पूज्य मुनि प्रमाणसागर की।

इसी क्रम में 24 मई को श्री श्रुतपंचमी महोत्सव मनाया गया जिसमें पूज्य मुनिवर ने श्रुतावतार की कथा सुनाकर विशाल जनसमूह आनंदानुभूत कर दिया प्रभावक प्रवचनों का क्रम निरंतर जारी है।

सुरेश जैन 'सरल'
गढ़ाफाटक, जबलपुर

मैत्री समूह द्वारा विद्वानों का सम्मान

उज्जैन नगरी में श्रुत पंचमी के अवसर पर 24 मई, 2004 को पूज्य मुनिराज श्री क्षमासागर जी के सानिध्य में सम्पूर्ण राष्ट्र से पधारे हुए 8 विद्वानों का भारतीय साँस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप तिलक, पुष्पहार, शाल, श्रीफल एवं सम्मान-पत्र से सम्मान किया गया। सर्वप्रथम आमंत्रित विद्वानों द्वारा दीप प्रज्वलन किया गया। मंगल गान के पश्चात् श्री पन्नालाल बैनाड़ा, आगरा द्वारा मैत्री समूह का परिचय दिया गया। मध्यप्रदेश के महत्वपूर्ण एवं वरिष्ठ प्रशासनिक पदों पर पदस्थ रहे श्री सुरेश जैन भोपाल द्वारा विद्वज्जनों का आत्मीय स्वागत किया गया। प्रो. सरोजकुमार, इंदौर द्वारा सम्मान समारोह का संचालन किया गया। इस अवसर पर सभी विद्वानों को आत्म कल्याण एवं पूजन के उपकरण-स्वर्णिम णमोकार पट, शास्त्र, लेखनी, घड़ी, सुमरनी एवं धोती-दुपट्टा भेंट किया गया। सभी सामग्री सुविधाजनक ढंग से रखकर ले जाने के लिए उन्हें एक अच्छा बैग भी दिया गया।

इस अवसर पर आचार्य ज्ञानसागर एवं आचार्य विद्यासागर द्वारा विरचित हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य केन्द्रित विषयों पर की गई शोध के निर्देशकों एवं शोधार्थियों को जयपुर, आगरा, कोटा, बीना, शिवपुरी, दिल्ली एवं भोपाल से पधारे मैत्री समूह के नरेन्द्र कुमार बड़जात्या, राजकुमार बड़जात्या, सुभाष जैन, देवेन्द्र जैन एवं पी. सी. जैन आदि सदस्यों एवं उज्जैन जैन समाज के पदाधिकारियों द्वारा सम्मानित किया गया।

प्रो. डॉ. रतनचंद्र जैन, भोपाल विश्वविद्यालय के वरिष्ठ प्रोफेसर रहे हैं। उनका ग्रंथ 'जैन दर्शन में निश्चय और व्यवहार नय : एक अनुशीलन' प्रकाशित हो चुका है। वे जैन परम्परा और यापनीय संघ पर महत्वपूर्ण ग्रंथ तैयार कर रहे हैं। वे भोपाल से प्रकाशित 'जिनभाषित' के संपादक हैं। उनके निर्देशन में - जयोदय महाकाव्य : एक शैली : वैज्ञानिक अनुशीलन-विषय पर शोधार्थी डॉ. आराधना जैन, गंजबासौदा जिला विदिशा ने बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल से पी.एचडी. की उपाधि प्राप्त की। इस निर्देशन के लिए डॉ. जैन को सम्मानित किया गया।

डॉ. कपूरचंद्र जैन एवं डॉ. ज्योति जैन को- 'स्वतंत्रता संग्राम में जैनों का योगदान' एवं शोध कार्यों की संपूर्ण विवरणिका-हेतु सम्मानित किया गया। डॉ. जैन खतोली में प्राध्यापक हैं। उन्होंने अपनी पत्नी डॉ. ज्योति जैन के साथ यह महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ. ज्योति जैन, जैन संदेश एवं संस्कार सागर की सह-संपादिका हैं। श्रीमती जैन को श्रीमती विमला जैन, जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा तिलक एवं श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया गया।

स्व. डॉ. पी. डी. शर्मा एवं डॉ. दिलीप चौहान के निर्देशन

में -जैन विषय वस्तु से संबद्ध आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में सामाजिक चेतना : विशेषतः मूकमाटी में समाज चेतना पर शोध-विषय पर डॉ. श्रीमती सुशीला सालगिया, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर जो श्री क्लाथ मार्केट कन्या महाविद्यालय से 41 वर्षों की सेवा के पश्चात् सेवानिवृत्ति हुई हैं, ने वर्ष 1999 में पी.एचडी. उपाधि प्राप्त की है। इस अवसर पर डॉ. सालगिया एवं उनके निर्देशक डॉ. दिलीप चौहान को सम्मानित किया गया।

डॉ. शीलचंद्र जैन, विदिशा के निर्देशन में- 'आचार्य विद्यासागर की लोक दृष्टि और उनके काव्य का अनुशीलन'-विषय पर डॉ. श्रीमती सुनीता दुबे, बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल 2002 में पी.एचडी. उपाधि प्राप्त की। इस अवसर पर डॉ. शीलचंद्र जैन एवं श्रीमती सुनीता दुबे को सम्मानित किया गया।

डॉ. सुरेश आचार्य के निर्देशन में- जैन दर्शन के संदर्भ में मुनि विद्यासागर जी के साहित्य का अनुशीलन-विषय पर डॉ. श्रीमती किरण जैन, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से वर्ष 1992 में पी.एचडी. उपाधि प्राप्त की। इस अवसर पर डॉ. (श्रीमती) किरण जैन को सम्मानित किया गया। उनके पति डॉ. जिनेन्द्र कुमार जैन, प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर ने विद्वानों के उद्बोधन से संबंधित कार्यक्रम का संचालन किया।

डॉ. संगीता मेहता, इंदौर ने अपने निर्देशन में - आचार्य विद्यासागर जी के शतकों का साहित्यिक अनुशीलन एवं महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के जयोदय महाकाव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार-विषयों पर एम.ए. एवं एम.फिल. कक्षाओं के शोधार्थी छात्रों के माध्यम से लघु शोध प्रबंध तैयार कराये। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मेहता दंपति ने अपने पुत्र मयंक की मृत्यु के पूर्व उसके शरीर के महत्वपूर्ण अंग- दोनों गुर्दे, नेत्र, हृदय और चमड़ी-दान दिए थे। इस असाधारण दान के लिए मेहता दंपति को सम्मानित किया गया। मेहता दंपति से प्रेरणा लेकर उज्जैन के सुप्रसिद्ध जैन नमकीन भंडार के प्रोपराइटर श्री जीवनलाल जैन ने मृत्यु के पश्चात् अपनी आँखें दान करने की घोषणा की।

इस अवसर पर मैत्री समूह द्वारा आयोजित श्रुत पूजन की अत्यधिक सराहना की गई।

डॉ. संगीता जैन

माचना कालोनी, भोपाल

एलोरा गुरुकुल में पूज्य

गुरुमती माताजी ससंध विराजमान

परम पूज्य 108 आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज की परमशिष्या 105 आर्थिका गुरुमती माताजी का 47 आर्थिकाओं

तथा 50 ब्रह्मचारिणी दीदियों के साथ एलोरा गुरुकुल में दिनांक 22.04.2004 अक्षय तृतीया के दिन मांगलिक प्रवेश हुआ। इस अवसर पर एलोरा-सज्जनपुर तथा परिसर का दिगम्बर जैन समाज बड़ी संख्या में उपस्थित था।

प.पूज्य 105 दृढ़मती माताजी के साथ 32 आर्यिकाएं जटवाडा, औरंगाबाद, कचनेर, पैठण क्षेत्र का दर्शन करके यहाँ आयीं। यहाँ प्रतिदिन आर्यिकाओं का षटखण्डागम एवं प्रवचनसार का स्वाध्याय तथा समाज के लिए तत्त्वार्थसूत्र इत्यादि की कक्षाएं एवं विशेष अवसरों पर प्रवचनादि का भी आयोजन हो रहा है। माताजी के प्रवचनादि के माध्यम से परिसर में समाज को धर्मलाभ प्राप्त हो रहा है।

दिनांक 16.05.2004 को पं. श्री रतनलाल जी बैनाड़ा आगरावालों का आर्यिकादर्शन एवं क्षेत्र दर्शन हेतु आगमन हुआ। संस्था द्वारा की गई व्यवस्था-तथा संस्था कार्यप्रणाली को देखकर श्री बैनाड़ा जी ने संस्था की सराहना की।

दिनांक 17.05.2004 को किशनगढ़ निवासी दानवीर श्रीमान अशोककुमार जी पाटनी, आर. के. मार्बल का आगमन माताजी के दर्शन हेतु हुआ। आपने "आ. विद्यासागर सभागृह" के निर्माण हेतु 11,11,111/- राशि की स्वीकृत दी। तथा कार्य को शीघ्रातिशीघ्र शुरू कर पूर्ण करने को कहा। आपने इससे पूर्व भी "आ. आर्यनंदी छात्रावास" हेतु 251,000/- की राशि दी थी। दो वर्ष पूर्व अनंतमती माताजी एवं आदर्शमती माताजी के चातुर्मास के दरम्यान प्रतीभामंडल की ब्रह्मचारिणी बहनों की व्यवस्था के लिए भी 5 लाख की राशि आपने दी थी।

गुरुकुल के प्रतीभावंत छात्रों के लिए पिछले 4 सालों से प्रतिवर्ष 52,200/- रु. की पुरस्कार राशि आपके द्वारा दी जा रही है। भविष्य में इस पुरस्कार राशि को कायम रखने का आश्वासन श्री अशोक जी पाटनी साहब ने दिया। "आप काम करते रहो-आगे और आगे बढ़ते रहो- पैसों की चिंता मत करो" ऐसे आश्वासन बड़ी विनम्रता के साथ आपने किया। साथ ही श्री ओमप्रकाश जी जैन सालु ग्रुप, सूरतवालों ने भी निर्माण कार्य में आर्थिक सहकार्य की भावना जताई।

इस पूरी व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं सफल बनाने के लिए श्री पन्नलाल जी गंगवाल, डॉ. प्रेमचंद पाटनी, श्री काहेडसर, श्री निर्मलसर, श्री अनिलजी काला, श्री गौतमीजी ठोले, श्री राजकुमार जी पांडे, जयचंद जी पाटनी, गुरुदेव समंतभद्र विद्या मंदिर का स्टाफ, तथा एलोरा-सज्जनपुर तथा परिसर का दिगम्बर जैन समाज अहर्निश प्रयत्नरत है।

एकान्तवाद का गढ़ ध्वस्त

करगुवाँ जी (झाँसी) में शास्त्रपरिषद् का विद्वत्प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

यहाँ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सावलियाँ पार्श्वनाथ, करगुवाँ जी (झाँसी) में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्र-परिषद् का विद्वत्-प्रशिक्षण शिविर एवं नैमित्तिक अधिवेशन पूज्य उपाध्यायरत्न ज्ञानसागर जी महाराज के संघ-सान्निध्य में सफलतापूर्वक दिनांक 17 मई से 23 मई, 2004 के मध्य आयोजित हुआ। पूज्य उपाध्याय रत्न ज्ञानसागरजी महाराज, प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाब चंद्र जैन 'पुष्प', प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद, डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत आदि विद्वानों द्वारा निमित्त-उपादान, निश्चयनय व व्यवहारनय, आगम और अध्यात्म, क्रमबद्ध पर्याय एवं पुरुषार्थ, सम्यग्दर्शन व चार अनुयोग विषयों पर आगम एवं युक्ति पूर्वक विद्वत्पूर्ण व्याख्यानों से एकान्तवाद के गढ़ ध्वस्त हो गए एवं समाज में एकान्तवादियों द्वारा प्रसूत भ्रांतियों का निराकरण किया जाकर स्याद्वादी पताका दोधूयमान हो गयी।

सप्तदिवसीय इस शिविर में शास्त्र-परिषद् के आह्वान पर देश के विभिन्न भागों से अर्द्धशताधिक विद्वानों ने भाग लेकर आगम और अध्यात्म के विविध रहस्यों पर नाना प्रमाण समन्वित प्रशिक्षण प्राप्त किया।

प्रशिक्षण-कक्षाएँ डॉ. श्रेयांस कुमार (सिद्धांत), डॉ. कमलेश कुमार जैन (तत्त्वार्थ सूत्र), प्रा. अरुण कुमार जैन (व्याकरण-शास्त्र व छंद विज्ञान), ब्र. जय निशांत जैन (विधि विधान), पं. विनोद कुमार जैन (वास्तु विद्या), पं. गजेन्द्र कुमार जैन (ज्योतिर्विज्ञान) द्वारा संचालित हुयीं।

अधिवेशन में सहस्राधिक नर-नारियों एवं परिषद् के अर्द्धशताधिक विद्वान सदस्यों की उपस्थिति में निम्न प्रस्ताव पारित किये गये। 20 जून 1993 को मोराजी, सागर में पारित प्रस्ताव को किंचित् परिवर्तन के साथ पुनः प्रस्तुति।

प्रस्ताव क्र. 1 अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्र-परिषद् का यह खुला अधिवेशन जैन श्रावक एवं साधु-समाज में चरणानुयोग प्रतिपादित मर्यादाओं के प्रतिपालन में बढ़ती हुई उपेक्षा-वृत्ति पर चिंता व्यक्त करता है। वह यह अनुभव करता है कि एक ओर श्रावकों में जहाँ रात्रि भोजन एवं अभक्ष्य-भक्षण की प्रवृत्ति तथा नित्य देव-दर्शन, स्वाध्याय, संयम-सदाचार आदि के प्रति उदासीनता बढ़ रही है, वहीं दूसरी ओर साधु-संघों में आती जा रही अनुशासन की कमी, स्वेच्छाचारिता, एकल विहार, मंदिर-आश्रमादि बनाने में अनुरक्तता आदि भी खटकने वाली बातें हैं। जैन धर्म, समाज और संस्कृति की

सुरक्षा का दायित्व साधु एवं श्रावकों पर ही निर्भर है। साधु न्यायपालिका की तरह आचार-विचार जगत् का मार्गदर्शक है, तो श्रावक कार्यपालिका की तरह सामाजिक-धार्मिक संरचना का सर्जक है। यह अधिवेशन सभी पूज्य साधुवृन्द और श्रावकों से आगम के प्रकाश में आत्मालोचन करते हुए जागृत होकर दूर करने की प्रार्थना करता है।

यह अधिवेशन समाज में सेवारत सभी अखिल भारतीय स्तर की दिगम्बर जैन संस्थाओं से यह अपील करता है कि-

1. वे जहाँ-जहाँ उनकी शाखायें हैं, वहाँ-वहाँ नियमित स्वाध्याय गोष्ठियों और धार्मिक रात्रि-पाठशालाओं का स्थानीय विद्वानों के सहयोग से स्थापन एवं संचालन करें।

2. वे अपनी-अपनी शाखाओं के माध्यम से रात्रि भोजन, अभक्ष्य-भक्षण मुख्यतः मादक पदार्थों के सेवन तथा बहुप्रचलित डिनर आदि से गृहस्थों को विरत करने के लिए पत्रों, पत्रकों, ट्रेक्टों तथा अन्य माध्यमों से एक सशक्त आंदोलन चलायें।

3. वे विवाह कार्य दिन में ही सम्पादित करने के लिये समाज को प्रेरित करें, ताकि जीवहिंसा में निमित्त आतिशबाजी, मद्यपान, रात्रि के विद्युत प्रदूषण, अश्लील भण्ड नृत्यादिकों से आ रही विकृतियों को दूर किया जा सके।

4. वे सामाजिक जैन उत्सवों में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अंतर्गत जैनाचार और संस्कृति के संवर्धक कार्यक्रमों के आयोजनों के लिए वातावरण बनायें तथा श्रृंगार-प्रधान काव्यपाठादि या नृत्य-नाटिकाओं के आयोजन न करने के लिए प्रेरणा दें।

5. जैन उत्सवों में होने वाले खानपानादि में लोग जूते-चप्पल पहनकर भोजन आदि न करें तथा आलू आदि कंदमूल बनाये या परोसे न जायें, यह भी सुनिश्चित करें।

6. अन्तर्जातीय विवाह के नाम पर जैनेतरों (सिख, मुसलमान, खत्री, ईसाई आदि) के साथ विवाह संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति संस्कृति के लिए घातक है। ऐसे धर्म निषिद्ध विवाह-संबंध करने वालों को कम से कम संस्था के पदों पर बनाये रखने पर तुरन्त विचार करें, ताकि लोग ऐसे कार्यों के प्रति निरुत्साहित हों।

यह अधिवेशन हम सबकी आराधना के केंद्र एवं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के मूर्त्तिमान स्वरूप परम-पूज्य आचार्यों, साधुओं, आर्यिका माताओं एवं त्यागी वृंद से यह विनम्र प्रार्थना करता है कि :-

1. वे 'मेरा शत्रु भी एकाकी विचरण न करे' इस जिनाज्ञा का अक्षरशः पालन स्वयं करें और करायें।

2. वे मंदिर, आश्रम, मानस्तम्भ, पाठशालाओं आदि के

निर्माण-कार्यों में स्वयं या अपने संघस्थ त्यागी या संघ-संचालक आदि के माध्यम से चल रही प्रवृत्तियों से अपनी रत्नस्वरूप इस देवदुर्लभ पर्याय को मलिन न होने दें। अधिक से अधिक स्वयं को ऐसे सत्कार्यों के लिए गृहस्थों या सम्बद्ध प्रबंध समितियों को प्रेरित करने तक ही सीमित रखें।

3. ख्याति-लाभ-पूजादि की चाह से स्वयं को विरत रखते हुए लौकिक क्रियाओं में ही अनुरक्त न रहें, उपाधियों आदि के व्यामोह से बचें तथा अनियत-विहार के नियम का पालन करें।

4. गृहस्थों को रात्रिभोजन न करने, सप्त-व्यसनो से बचने, अष्टमूलगुणों का पालन करने, नित्य देवदर्शन, स्वाध्याय आदि करने की विशेष प्रेरणा दें।

5. मूलाचार में निर्दिष्ट साधुयोग्य उपकरणों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के संसाधनों के प्रवेश से संघ एवं स्वयं को बचायें।

6. पूज्य संतजन वैचारिक असहिष्णुता से बचें तथा अपने पुनीत सान्निध्य में किसी की निंदा, भर्त्सना, बहिष्कार जैसे प्रसंगों को उपस्थित न होने दें। इससे वीतरागता लांछित होती है।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् के सभी विद्वान् इस प्रस्ताव के क्रियान्वयन में समर्पित होकर मनसा वाचा-कर्मणा सहयोग करेंगे।

प्रस्तावक : नरेन्द्रप्रकाश जैन

समर्थक : डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

प्रस्ताव क्र. 2 अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् का दिनांक 24 मई 2004 को अतिशय क्षेत्र कुरगवाँ जी (झाँसी) में सम्पन्न यह अधिवेशन अपने वरिष्ठ सदस्य प्रो. रतनचंद्र जैन द्वारा भोपाल से प्रकाशित पत्रिका 'जिनभाषित' में आदिकुमार की रात्रि में निकाली गई बारात के विरोध में व्यक्त विचारों को आगमोक्त मानता है। प्रोफेसर सा. के विरुद्ध एक वर्ग विशेष द्वारा जिस अशोभन एवं निंदापरक शब्दावली का प्रयोग किया गया, उस पर यह अधिवेशन घोर चिंता प्रकट करते हुए आगमानुकूल विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन मानता है। भविष्य में समाज में क्षोभ उत्पन्न करने वाले ऐसे अवांछनीय प्रसंगों से संत और समाज दोनों को बचना चाहिए।

प्रस्तावक : प्रा. अरुण कुमार जैन, व्यावर

समर्थक : डॉ. कमलेश कुमार जैन, वाराणसी

प्रस्ताव क्र. 3 अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् का अतिशय क्षेत्र कुरगवाँ जी (झाँसी) में पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सान्निध्य में आयोजित इस खुले अधिवेशन में परिषद् ने शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों की निरन्तरता को बनाए रखने तथा उसके लिए सुनिश्चित पाठ्यक्रम एवं उन्हें

पहले से भी अधिक सुगठित एवं अनुशासित बनाए रखने का संकल्प लिया है। इसके लिए निम्न विद्वानों की एक समिति गठित की जाती है-

1. डॉ. श्रेयांस कुमार जैन - परामर्श प्रमुख
2. डॉ. अरुण कुमार जैन - संयोजक
3. ब्र. जय निशांत जैन - सदस्य
4. प्रा. निहालचंद जैन - सदस्य
5. पं. विनोद कुमार जैन - सदस्य

प्रस्तावक : पं. जयन्त कुमार जैन, सीकर

समर्थक : डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, सनावद

प्रेषक : प्रा. अरुण कुमार जैन

प्राकृतिक चिकित्सा शिविर

योग, ध्यान, प्राकृतिक चिकित्सा के शिविर लगाकर औषधिदान, आहारदान, अभयदान का सही सदुपयोग करें।

महानुभाव,

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर जन-जन तक शाकाहार और औषधिहरहित, साइड इफेक्ट से दूर, जैन पद्धति और प्रकृति पर आधारित चिकित्सा देने के लिए कृत संकल्पित है। लेकिन किसी भी महायज्ञ को संपन्न कराने में सभी की आहुतियाँ लगती हैं। उन दानदाताओं, समाज सेवियों से अनुरोध है कि जो अपनी चंचला लक्ष्मी का प्रयोग कर औषधि दान, आहारदान और अभयदान में पुण्यजन करना चाहते हैं। वे अपने शहर-गांव में 10 दिवसीय प्राकृतिक चिकित्सा शिविर (जिसमें मोटापा, डायबिटीज, आर्थराइटिस, सर्दी-जुकाम, बुखार, पीलिया, कमर, पेट दर्द एवं महिलाओं संबंधी रोगों के लिए) लगाकर शुद्ध शाकाहार और अहिंसा का प्रचार प्रसार करें।

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर अपनी निःशुल्क सेवाएं देने तैयार हैं। अन्य व्यवस्थाएं आपको करनी होगी। शिविर की जानकारी हेतु लिखें या संपर्क करें।

प्राकृतिक चिकित्सा स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी

यदि आप बीमारी से तंग आ चुके हैं, दवाईयाँ ले-लेकर परेशान हो चुके हैं। दवाईयों के साइड इफेक्ट, आफ्टर इफेक्ट से परेशान हो चुके हैं और आपकी बीमारी को एक लंबा समय हो चुका है। आप एैलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेद व अन्य पैथियों की दवाईयाँ और उपचार ले चुके हैं, लेकिन ठीक नहीं हो रहे

हैं। ठहरिये लेकिन आपके पास अभी भी विश्वास है, उत्साह है, ईश्वर पर आस्था है और प्रकृति की सत्ता को मानते हैं। और यह जानते एवं मानते हैं कि जब दवा काम नहीं करती हैं तो दुआ काम करती है और जब दुआ काम नहीं करती तो हवा काम करती है।

आइये भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सा, सागर की सेवाएं लें, प्रत्यक्ष न मिल पाने पर प्रश्नोत्तरी माला में हमें लिख भेजें:-

1. नाम
2. पिता/पति का नाम
3. उम्र लिंग
4. पता
5. व्यवसाय/नौकरी
6. विवाहित/अविवाहित संतानें
7. बीमारी कब से है/शुरुआत कैसे हुई लक्षण वगैरह
8. वर्तमान में लक्षण व अनुभूति
9. कहाँ-कहाँ, कब-कब, किस-किस चिकित्सा पद्धति से इलाज लिया उसके परिणाम
10. ताजा रिपोर्ट का विवरण
11. किसी प्रकार की एलर्जी
12. मानसिक परेशानी/पारिवारिक/सामाजिक/आर्थिक विवरण
13. बीमारी का आनुवांशिकी संबंध यदि है तो
14. हाइट वजन
15. अन्य कोई जानकारी जो स्वास्थ्य से संबंधित हो
16. विस्तृत विवरण के लिए अलग से पृष्ठ लगाकर जानकारी भेजें। पाठकों के लिए

पत्र व्यवहार का पता : डॉ. रेखा जैन

मुख्य चिकित्सा प्रभारी

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय

खुरई रोड, सागर (म.प्र.)

विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट में कार्यशाला

विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, वल्लभ नगर, भोपाल में मई 2004 के तृतीय सप्ताह में पर्सनल्टी डेव्हलपमेंट तथा कैरियर गाइडेंस कार्यशाला के समापन के अवसर पर न्यायमूर्ति

श्री एन. के. जैन, अध्यक्ष म.प्र. उपभोक्ता फोरम की अध्यक्षता एवं श्रीमती शशि जैन, आई.ए.एस. अध्यक्ष मध्यप्रदेश माध्यमिक शिक्षा मण्डल, भोपाल के मुख्य आतिथ्य में छात्रों को प्रमाण पत्र एवं पारितोषक वितरण किए गए। अतिथियों का स्वागत संस्थान के प्रबंध निदेशक श्री सुरेश जैन, एवं सहभागियों के प्रतिनिधि द्वारा किया गया। सहभागी श्री अभिषेक जैन एवं सुश्री शुचि जैन ने बताया कि उनके लिए कार्यशाला अत्यधिक उपयोगी रही है। उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए इस कार्यशाला में महत्वपूर्ण जानकारी तथा शिक्षा प्राप्त हुई।

श्रीमती शशि जैन ने विद्यासागर इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट द्वारा विशेषतः ग्रामीण छात्रों के चतुर्मुखी विकास हेतु किए जा रहे प्रयासों की सराहना की और छात्रों के ऐसे प्रयासों का पूर्ण लाभ लेने तथा अपने व्यक्तित्व में अच्छी आदतें विकसित करने की प्रेरणा दी। न्यायमूर्ति श्री जैन ने बताया कि सतत एवं कठिन परिश्रम से ही जीवन में सफलता प्राप्त होती है।

डॉ. संगीता जैन

माचन कालोनी, भोपाल

शोक-संदेश

श्रीमती सेठानी विमला देवी धर्मपत्नी सेठ भगवान दास जी का स्वर्गवास दिनांक 4 मई, 2004 को जम्बू स्वामी सिद्ध क्षेत्र चौरासी मथुरा में हो गया है। आपकी तीन संतानें हैं, पुत्री राजरानी गोधा धर्मपत्नी श्री विमलचंद गोधा फर्म शांति विजय ज्वेलर्स मुम्बई, दिल्ली पुत्र श्री विजय कुमार एवं पुत्री ब्रजवाला धर्मपत्नि प्रकाशचंद जी जयपुर/दिल्ली हैं।

पुत्र विजयकुमार जैन महासभा, महासमिति एवं राजनीति में सक्रिय हैं। पूर्वजों द्वारा निर्मित द्वारकाधीश मंदिर, रंगनाथ मंदिर (वैष्णव मंदिर) व जम्बूस्वामी सिद्धक्षेत्र मथुरा की व्यवस्था देखते हैं।

श्री दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र घोषित

अजमेर दिनांक 22 मई, 2004 संमार्ग दिवाकर आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज के पट्टशिष्य प. पूज्य आचार्य 108 श्री भरतसागर जी महाराज ने अ. भा. दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, ज्ञानोदय नगर, नारेली-अजमेर, जिसका परम पूज्य आचार्य 108 श्री विद्यासागर जी महाराज एवं उनके परम शिष्य मुनि पुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज की पावन प्रेरणा एवं आशिर्वाद से निर्माण हो रहा है में आज मंगल पदार्पण हुआ।

आचार्य संघ का क्षेत्र के पदाधिकारियों द्वारा पाद प्रक्षालन

तथा उनके साथ पधारे धर्मानुरागी बन्धुओं के भावभी ने स्वागत के बाद संसंध उन्होंने अहमदाबाद के अक्षरधाम के पैटर्न पर निर्मित हो रहे श्री आर. के. मार्बल्स प्रा. लि., मदनगंज-किशनगढ़ द्वारा निर्माणाधीन श्री आदिनाथ जिनालय को देखकर वे अभिभूत हो गए। यहाँ पर निर्मित संतशाला तथा पर्वत पर निर्माणाधीन त्रिमूर्ति जिनालय एवं त्रिकाल चौबीसी के मंदिरों के अवलोकन के बाद जब वे निर्माणाधीन सहस्त्रकूट जिनालय पहुँचे, वहाँ की प्रचण्ड शीतल वायु ने उन्हें भाव विभोर कर दिया तथा आचार्य श्री को सम्मदाचल तीर्थ क्षेत्र के गौतम गणधर टोंक एवं श्री पार्श्वनाथ टोंक का स्मरण हो उठा। उस समय साथ चलने वाले धर्मप्रेमी बन्धुओं के समक्ष उनके श्रीमुख के इस क्षेत्र को अतिशय क्षेत्र बन जाने का आशीर्वाद निकल पडा।

अपनी इस भावना को आचार्य श्री ने पुनः क्षेत्र पर हुई धर्मसभा में भी तीर्थ क्षेत्र की व्याख्या करते हुए इस क्षेत्र को अतिशय क्षेत्र उद्घोषित किया। क्षेत्र के सौभाग्य से आचार्य श्री संसंध के पर्दापण से यहाँ पर मेला सा लग गया तथा सैकड़ों नर नारियों ने आचार्य श्री की इस घोषणा का तुमुलनाद से हर्ष विभोर होकर अपने भाव प्रकट किये। आचार्य श्री ने परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की दूरदृष्टि की प्रशंसा करते हुए इस क्षेत्र के शीघ्र निर्माण पूर्ण होने का मंगल आशीर्वाद प्रदान किया।

कु. निधि जैन I.A.S. का अभिनंदन

दिनांक 28 मई, 2004 को प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान, जबलपुर में कु. निधि जैन I.A.S. सत्र 2003 में 27वाँ रैंक प्राप्त करने वाली मेधावी छात्रा का भावभीना अभिनंदन किया गया। कु. निधि जैन ने अपनी सफलता में बताया कि प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी में नियत समय से प्रतिदिन अभ्यास के द्वारा, माता-पिता की प्रेरणा व सहयोग का सांमजस्य उनकी सफलता का मूलमंत्र था।

सूचना

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर (जयपुर) से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर, प्रवचन, विधि-विधान में प्रवीण युवा विद्वान उपलब्ध हैं।

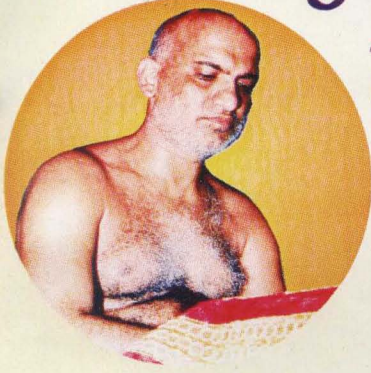
पाठशाला तथा मंदिर में विधान प्रवचन आदि के लिए, अष्टान्हिका पर्व में सिद्धचक्र विधान एवं पर्यूर्षण पर्व में प्रवचन हेतु आवश्यकतानुसार निम्नलिखित पते पर संपर्क करें :-

पं. रतनलाल बैनाड़ा

1/205, प्रोफेसर कालोनी, आगरा

फोन: 0562-2151428, 2152278

सुख चाहते हो तो दूसरों को सुखी बनाओ'



मुनि श्री सुधासागर जी

'सुखी होना सब चाहते हैं। कोई भी दुःख नहीं चाहता परन्तु मन के चाहने से क्या कभी कुछ मिलता है? कुछ नहीं मिलता। जब पुरुषार्थ करोगे, तभी कुछ मिलेगा, यह नियम है। सुख चाहते हो तो पहले दूसरों को सुखी बनाओ। अमीर आदमी का वैभव देखकर ईर्ष्या मत करो। गिरे हुए को उठाना सीखो, गरीब को मिटाने, उसे दबाने, कुचलने की संकीर्ण मानसिकता को त्यागो, कराहते जीव की वेदना को अनुभव करो, पीड़ित को दवा, भूखे को रोटी, प्यासे को पानी, निर्धन को वस्त्र, अनाथ व बेसहारे को आश्रय देना सीखो, तभी सुखी बन पाओगे।'

यदि सुख चाहते हो, फिर बीज दुःख के बोना बंद करो। आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि जितनी वह सुख की कामना पर कामना करता चला जा रहा है, उतनी वह न साधना करता है और न ही मानवीय चिंतन। हर मनुष्य यही चाहता है कि मेरा कोई बुरा न सोचे परन्तु खुद दूसरे का कितना बुरा सोचता है, इस पर कभी ख्याल किया? जब खुद बुरा सोचेगा, बुरा करेगा, फिर अच्छा परिणाम कैसे मिलेगा? प्रकृति का यह नियम है कि जैसा दिया, वैसा पाओ, फिर दुःख आने पर रोते क्यों हों?

चाहने से कुछ नहीं मिलता बल्कि करने से भविष्य अच्छा बन सकता है। कोई नहीं चाहता कि मेरी जिंदगी में पाप आ जाएं तब क्या पाप बिना बुलाए आते हैं? पाप कभी आमंत्रण के बिना आते ही नहीं बल्कि ध्यान रखना जितने भी पाप उदय में आते और आ रहे हैं इन सबको आमंत्रण देकर हम स्वयं ने ही बुलाया है। कोई दूसरा दोषी नहीं है। हम स्वयं भी उसके कारक हैं। यह विडम्बना है कि सब धर्म को अच्छा मानते हैं परन्तु चर्चा देखो तो अधर्म की। मंदिर अच्छा लगता है, किन्तु मंदिर से दूर भागते हो। साधु संत अच्छे लगते हैं, उनकी वाणी (सत्संग) आनंद की अनुभूति देता है, परन्तु करोगे अपने मन की और चलोगे खोटे मार्ग पर फिर सुख कैसे मिलेगा? जिस दिन अपनी दृष्टि और व्यवहार में मनुष्यता आ जाए, भक्ति का ज्ञान उत्पन्न

हो जाए, समझ लेना फिर आज नहीं तो कल सुख जरूर मिलेगा, यह मेरी नहीं परमात्मा की गारंटी है। पुण्य कमाने का रास्ता सिर्फ एक ही है और वह है धर्म किन्तु पाप कमाने के अनेक रास्ते हैं। सुख का साधन चाहे संसार का हो या परमात्मा का, उसका मार्ग एक ही 'धर्म' है। वह ध्यान रखना कि धर्म व धन की क्वालिटी एक ही है। धर्म के बिना किसी को भी संसार का सुख, वैभव, ऐश्वर्य नहीं मिला और परमात्मा की प्राप्ति से लेकर मोक्ष तक भी धर्म से ही संभव है। एक ही रास्ता है धर्म का परन्तु जिसको जिस मार्ग पर चलना है, उसे वही तो मिलेगा। प्रवचन सभा में बैठे तमाम स्त्री-पुरुषों को 'भू.पू. पुण्यात्मा' बताते हुए मुनिश्री ने कहा कि पुण्य के बिना मनुष्य पर्याय मिलती ही नहीं है। पूर्व भव में जब अनंत पुण्य कर्म किए होंगे, तभी तो यह मानव देह मिली है। इस भव में भले ही कर्म रावण जैसे कर रहे हो परन्तु यह भू.पू. पुण्य कर्मों का ही प्रतिफल है कि आज संत समागम में जिनवाणी का रसपान कर रहे हो। यह शत-प्रतिशत गारंटी है कि यदि जिनवाणी माँ के अमृत वचन हृदयंगम हो जाएं तो फिर कभी 84 लाख योनियों में भटकना नहीं पड़ेगा।

पुण्यात्मा रावण भी था, तभी तो वह सोने की लंका का मालिक बना। राम के पास सोने की लंका नहीं थी किन्तु रावण नरक में इसलिए गया कि वह अपने आचरण से दुराचारी बना और राम मोक्ष में इसलिए गए कि वे सदाचारी बनकर संसार को अपना अमृत बाँट गए। रावण व राम में सिर्फ इतना फर्क था कि रावण ने पुण्य से पाप कमाया और भरत ने पुण्य से भगवान को पाया। मुनिश्री ने सचेत किया कि किसी धनवान को देखकर ईर्ष्या मत करो। वह उसकी पूर्व पुण्य कर्म की गाड़ी कमाई का प्रतिफल है। पूर्व में खूब पुण्य किए होंगे तभी तो उसका लाभ उठा रहा है, परन्तु यह भी निश्चित है कि वह अब जो खोटे कर्म कर रहा है, उसका भी दण्ड जरूर भोगेगा। सीधा नरक में जाएगा, इसे कोई टाल नहीं सकता, यह ब्रह्म सत्य है। चाहे सुखी बनना है या मोक्ष को पाना है तो धर्म की गाड़ी में बैठ जाओ फिर मंजिल दूर नहीं है।

'अमृतवाणी' से साभार

सम्यक्-अनुप्रेक्षा

महेन्द्र कुमार जैब

बंजारों की इस महफिल में हम भी इक बंजारे,
घूम-घूम कर लख चौरासी, नहीं अभी हम हारे।
पुण्योदय से जिनकुल पाकर, कुछ सुयोग है पाया,
दिव्य-देषणा सुन जिनवर की, मन हमरा हर्षाया ॥ १ ॥

हस्तीवत स्नान रहा सब, नहीं चेतना जागी,
मिथ्यातम में फसा रहा, और मोह नींद न भागी।
राग-द्वेष और मोह वृत्ति से, बहुविध बंध किया है,
सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागर तक, अनुबंध किया है ॥ २ ॥

गहन मित्रता अष्ट कर्म से, सतत् निभाता आया,
पर जब वे सब उदय में आते, सो ही मन अकुलाया।
फिर भी न यथार्थ को समझा, आर्त-रौद्र मन कीना,
दोषा रोपड़ कर निमित्त पर, और बंध कर लीना ॥ ३ ॥

उपादान पर दृष्टि न रखकर, निज को है भरमाया,
बार-बार मर-मर कर मैंने, यू ही जन्म गंवाया।
भूतकाल में किये पाप जो, सो ही भविष्य में पाया,
वर्तमान में भोग-भोग कर, मन यू ही अकुलाया ॥ ४ ॥

क्रमशः

7, गुरु प्रतीक्षा
रामानंद नगर, भोपाल